॥ श्री हरिः ॥

पढो समझो और करो

श्रीहनुमान प्रसाद जी पोद्दार ब्लॉग-
http://hanumanprasadpoddarbhaiji.blogspot.in/

- श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार

निवेदन

इस छोटी-सी पुस्तकमें ऐसी छोटी-छोटी शिक्षाप्रद घटनाओं-का संग्रह किया गया है जिनसे प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन-सुधार-में पर्याप्त सहायता प्राप्त कर सकता है। स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े, सभी इन आदर्श प्रसङ्गोंको पढ़कर लाभ उठा सकते हैं। एक-एक प्रसङ्ग ऐसा बहुमूल्य है कि उसके जीवनमें उतर जानेपर उतने अंशमें मनुष्य पवित्र बन जाता है और फिर अपने आचरणसे दूसरोंको भी पवित्र बना सकता है। इसीसे इस पुस्तकका नाम ऐसा रक्खा गया है जिससे पढ़ने, पढ़कर भलीभाँति समझने और समझकर वैसे ही करने अर्थात् उसे जीवनमें उतारनेकी प्रेरणा मिलती है। हमारा नम्र निवेदन है कि पाठक-पाठिकागण तथा हमारे विद्यार्थी भाई इससे लाभ उठावें।

निर्जला एकादशी
२०११ वि०

हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीहरिः

विषय-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

॥ श्रीहरिः ॥

पढ़ो, समझो और करो

शुकदेवजीकी समता

पिता वेदव्यासजीकी आज्ञासे श्रीशुकदेवजी आत्मज्ञान प्राप्त करनेके लिये विदेहराज जनककी मिथिला नगरीमे पहुँचे। वहाँ खूब सजे-सजाये हाथी, घोड़े, रथ और स्त्री-पुरुषोंको देखा। पर उनके मनमें कोई विकार नहीं हुआ। महलके सामने पहली ड्योढ़ीपर पहुँचे, तब द्वारपालोंने उन्हें वहीं धूपमें रोक दिया। न बैठनेको कहा, न कोई बात पूछी। वे तनिक भी खिन्न न होकर धूपमें खड़े हो गये। तीन दिन बीत गये। चौथे दिन एक द्वारपालने उन्हें सम्मानपूर्वक दूसरी ड्योढ़ीपर ठंडी छायामें पहुँचा दिया। वे वहीं आत्मचिन्तन

करने लगे । उन्हें न तो धूप और अपमानसे कोई क्लेश हुआ, न ठंडी छाया और सम्मानसे कोई सुख ही ।

इसके बाद राजमन्त्रीने आकर उनको सम्मानके साथ सुन्दर प्रमदावनमें पहुँचा दिया । वहाँ पचास नवयुवती स्त्रियोंने उन्हें भोजन कराया और उन्हें साथ लेकर हँसती, खेलती, गाती और नाना प्रकारकी चेष्टा करती हुई प्रमदावनकी शोभा दिखाने लगीं । रात होनेपर उन्होंने शुकदेवजीको सुन्दर पलंगपर बहुमूल्य दिव्य बिछौना बिछाकर बैठा दिया । वे पैर धोकर रातके पहले भागमें ध्यान करने लगे । मध्यभागमें सोये और चौथे पहरमें उठकर फिर ध्यान करने लगे । ध्यानके समय भी पचासों युवतियाँ उन्हें घेरकर बैठ गयीं; परंतु वे किसी प्रकार भी शुकदेवजीके मनमें कोई विकार पैदा नहीं कर सकीं ।

इतना होनेपर दूसरे दिन महाराज जनकने आकर उनकी पूजा की और ऊँचे आसनपर बैठाकर पाद्य, अर्घ्य और गोदान आदिसे उनका सम्मान किया । फिर स्वयं आज्ञा लेकर धरतीपर बैठ गये और उनसे बातचीत करने लगे ।

बातचीतके अन्तमें जनकजीने कहा—'आप सुख-दुःख, लोभ-क्षोभ, नाच-गान, भय-भेद सबसे मुक्त परम ज्ञानी हैं । आप अपने ज्ञानमें कमी मानते हैं, इतनी ही कमी है । आप परम विज्ञानघन होकर भी अपना प्रभाव नहीं जानते हैं ।' जनकजीके बोधसे उन्हें अपने स्वरूपका पता लग गया ।

पार्वतीकी दया

महाभागा हिमाचलनन्दिनी पार्वतीने भगवान् शङ्करको पति-रूपसे प्राप्त करनेके लिये घोर तप किया। श्रीशङ्करजीने प्रसन्न होकर दर्शन दिये। पार्वतीने उन्हें वरण कर लिया। इसके बाद शङ्करजी अन्तर्धान हो गये। पार्वतीजी आश्रमके बाहर एक शिलापर बैठी थीं। इतनेमे उन्हें किसी आर्त बालकके रोनेकी आवाज सुनायी दी। बालक चिल्ला रहा था। 'हाय-हाय! मैं बच्चा हूँ, मुझे ग्राहने पकड़ लिया है। यह अभी मुझे चबा जायगा। मेरे माता-पिताके मैं ही एकमात्र पुत्र हूँ। कोई दौड़ो, मुझे बचाओ, हाय! मैं मरा!'

बालकका आर्तनाद सुनकर पार्वतीजी दौड़ीं। देखा, एक बड़े ही सुन्दर बालकको सरोवरमें ग्राह पकड़े हुए है। वह पार्वतीको देखते ही जल्दीसे चलकर बालकको सरोवरके बीचमें ले गया। बालक बड़ा तेजस्वी था, पर ग्राहके द्वारा पकड़े जानेसे करुण-क्रन्दन कर रहा था। बालकका दुःख देखकर पार्वतीजीका हृदय द्रवित हो गया। वे बोलीं—'ग्राहराज! बालक बड़ा दीन है, इसे तुरंत छोड़ दो।' ग्राह बोला—'देवी! दिनके छठे भागमें जो मेरे पास आवेगा, वही मेरा आहार होगा। यह बालक इसी कालमे यहाँ आया है, अतएव ब्रह्माने इसे मेरे आहाररूपमें ही भेजा है, इसे मैं नहीं छोड़ सकता।' देवीने कहा—'ग्राहराज! मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ। मैंने हिमाचलकी चोटीपर रहकर बड़ा तप किया है, उसीके बलसे तुम इसे छोड़ दो।' ग्राहने कहा—'तुमने जो उत्तम

तप किया है, वह मुझे अर्पण कर दो तो मैं इसे छोड़ दूँ ।' पार्वतीने कहा—'ग्राहराज ! इस तपकी तो बात ही क्या है, मैंने जन्मभरमें जो कुछ भी पुण्य-संचय किया है, सब तुम्हें अर्पण करती हूँ, तुम इस बालकको छोड़ दो ।' पार्वतीके इतना कहते ही ग्राहका शरीर तपके तेजसे चमक उठा, उसके शरीरकी आकृति मध्याह्नके सूर्यके सदृश तेजोमय हो गयी । उसने कहा—देवी ! तुमने यह क्या किया ? जरा विचार तो करो । कितना कष्ट सहकर तुमने तप किया था और किस महान् उद्देश्यसे किया था । ऐसे तपका त्याग करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है । अच्छा, तुम्हारी ब्राह्मण-भक्ति और दीन-सेवासे मैं बड़ा संतुष्ट हूँ । तुम्हें वरदान देता हूँ—तुम अपनी तपस्याको भी वापस लो और इस बालकको भी ।' इसपर महाव्रता पार्वतीने कहा—'ग्राहराज ! प्राण देकर भी इस दीन ब्राह्मण-बालकको बचाना मेरा कर्तव्य था । तप तो फिर भी हो जायगा, पर यह बालक फिर कहाँसे आता ? मैंने सब कुछ सोचकर ही बालकको बचाया है और तुम्हें तप दिया है । अब इस दी हुई वस्तुको मै वापस नहीं ले सकती । बस, तुम इस बालकको छोड़ दो ।' इस बातको सुनकर ग्राह बालकको छोड़कर अन्तर्धान हो गया । इधर पार्वतीने अपना तप चला गया समझकर फिरसे तप करनेका विचार किया । तब शङ्करजीने प्रकट होकर कहा—'देवी ! तुम्हें फिरसे तप नहीं करना पड़ेगा । तुमने यह तप मुझको ही दिया है । बालक मैं था और ग्राह भी मैं ही था । तुम्हारी दया और त्यागकी महिमा देखनेके लिये ही मैंने यह लीला की । देखो—दानके फल-स्वरूप तुम्हारी यह तपस्या अब हजार गुनी होकर अक्षय हो गयी है ।'

कुन्तीका धर्म-प्रेम और त्याग

पाँचों पाण्डवोंको कुन्तीसहित जलाकर मार डालनेके उद्देश्यसे दुर्योधनने वारणावत नामक स्थानमें एक चपड़ेका महल बनवाया और अन्धे राजा धृतराष्ट्रको समझा-बुझाकर उनके द्वारा युधिष्ठिरको यह आज्ञा दिलवा दी कि 'तुमलोग वहाँ जाकर कुछ दिन रहो और भाँति-भाँतिसे दान-पुण्य करके पुण्य-संचय करो।'

दुर्योधनने अपनी चाण्डाल-चौकड़ीमें यह निश्चय किया था कि पाण्डवोंके वहाँ रहने लगनेपर किसी दिन रात्रिके समय आग लगा दी जायगी और चपड़ेका महल तुरंत पाण्डवोंसहित भस्म हो

जायगा। धृतराष्ट्रको इस बुरी नीयतका पता नहीं था; परंतु किसी तरह विदुरको पता लग गया और विदुरने उनके वहाँसे बच निकलनेके लिये अंदर-ही-अंदर एक सुरंग बनवा दी तथा सांकेतिक भाषामें युधिष्ठिरको सारा रहस्य तथा बच निकलनेका उपाय समझा दिया।

पाण्डव वहाँसे बच निकले और अपनेको छिपाकर एकचक्रा नगरीमें एक ब्राह्मणके घर जाकर रहने लगे। उस नगरीमें बक नामक एक बलवान् राक्षस रहता था। उसने ऐसा नियम बना रक्खा था कि नगरके प्रत्येक घरसे रोज बारी-बारीसे एक आदमी उसके लिये विविध भोजन-सामग्री लेकर उसके पास जाय। वह दुष्ट अन्य सामग्रियोंके साथ उस आदमीको भी खा जाता था। जिस ब्राह्मणके घर पाण्डव टिके थे, एक दिन उसीकी बारी आ गयी। ब्राह्मणके घर कुहराम मच गया। ब्राह्मण, उसकी पत्नी, कन्या और पुत्र अपने-अपने प्राण देकर दूसरे तीनोंको बचानेका आग्रह करने लगे। उस दिन धर्मराज आदि चारों भाई तो भिक्षाके लिये बाहर गये थे। डेरेपर कुन्ती और भीमसेन थे। कुन्तीने सारी बातें सुनीं तो उनका हृदय दयासे भर गया। उन्होंने जाकर ब्राह्मण-परिवारसे हँसकर कहा—'महाराज! आपलोग रोते क्यों हैं? जरा भी चिन्ता न करें। हमलोग आपके आश्रयमें रहते हैं। मेरे पाँच लड़के हैं, उनमेंसे मैं एक लड़केको भोजन-सामग्री देकर राक्षसके यहाँ भेज दूँगी।'

ब्राह्मणने कहा—'माता! ऐसा कैसे हो सकता है? आप हमारे अतिथि हैं। अपने प्राण बचानेके लिये हम अतिथिका प्राण

लें, ऐसा अधर्म हमसे कभी नहीं हो सकता ।'

कुन्तीने समझाकर कहा—'पण्डितजी ! आप जरा भी चिन्ता न करें । मेरा लड़का भीम बड़ा बली है । उसने अबतक कितने ही राक्षसोंको मारा है । वह अवश्य इस राक्षसको भी मार देगा । फिर, मान लीजिये, कदाचित् वह न भी मार सका तो क्या होगा । मेरे पाँचमें चार तो बच ही रहेंगे । हम लोग सब एक साथ रहकर एक ही परिवारके-से हो गये हैं । आप वृद्ध हैं, वह जवान है । फिर हम आपके आश्रयमे रहते हैं । ऐसी अवस्थामें आप वृद्ध और पूजनीय होकर भी राक्षसके मुँहमें जायँ और मेरा लड़का जवान और बलवान् होकर घरमें मुँह छिपाये बैठा रहे, यह कैसे हो सकता है ?'

ब्राह्मण-परिवारने किसी तरह भी जब कुन्तीका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया, तब कुन्ती देवीने उन्हें हर तरहसे यह विश्वास दिलाया कि भीमसेन अवश्य ही राक्षसको मारकर आवेगा और कहा कि 'भूदेव ! आप यदि नहीं मानेंगे तो भीमसेन आपको बलपूर्वक रोककर चला जायगा । मैं उसे निश्चय भेजूँगी और आप उसे रोक नहीं सकेंगे ।'

तब लाचार होकर ब्राह्मणने कुन्तीका अनुरोध स्वीकार किया ।

माताकी आज्ञा पाकर भीमसेन बड़ी प्रसन्नतासे जानेको तैयार हो गये । इसी बीच युधिष्ठिर आदि चारों भाई लौटकर घर पहुँचे । युधिष्ठिरने जब माताकी बात सुनी तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने माताको इसके लिये उलाहना दिया । इसपर कुन्तीदेवी बोलीं—

'युधिष्ठिर ! तू धर्मात्मा होकर भी इस प्रकारकी बातें कैसे कह रहा है ? भीमके बलका तुझको भलीभाँति पता है, वह राक्षसको मारकर ही आवेगा; परंतु कदाचित् ऐसा न भी हो, तो इस समय भीमसेनको भेजना ही क्या धर्म नहीं है ? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—किसीपर भी विपत्ति आवे तो बलवान् क्षत्रियका धर्म है कि अपने प्राणोंको संकटमें डालकर उसकी रक्षा करे। ये प्रथम तो ब्राह्मण हैं, दूसरे निर्बल हैं और तीसरे हमलोगोंके आश्रयदाता हैं। आश्रय देनेवालेका बदला चुकाना तो मनुष्यमात्रका धर्म होता है। मैंने आश्रयदाताके उपकारके लिये, ब्राह्मणकी रक्षारूप क्षत्रिय-धर्मका पालन करनेके लिये और प्रजाको संकटसे बचानेके लिये भीमको यह कार्य समझ-बूझकर सौंपा है। इस कर्तव्य-पालनसे ही भीमसेनका क्षत्रिय-जीवन सार्थक होगा। क्षत्रिय वीराङ्गना ऐसे ही अवसरोंके लिये पुत्रको जन्म दिया करती हैं। तू इस महान् कार्यमें क्यों बाधा देना चाहता है और क्यों इतना दुखी होता है ?'

धर्मराज युधिष्ठिर माताकी धर्मसम्मत वाणी सुनकर लज्जित हो गये और बोले—'माताजी ! मेरी भूल थी। आपने धर्मके लिये भीमसेनको यह काम सौंपकर बहुत अच्छा किया है। आपके पुण्य और शुभाशीर्वादसे भीम अवश्य ही राक्षसको मारकर लौटेगा।'

तदनन्तर माता और बड़े भाईकी आज्ञा और आशीर्वाद लेकर भीमसेन बड़े ही उत्साहसे राक्षसके यहाँ गये और उसे मारकर ही लौटे।

माँका हृदय

द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंकी सोते समय हत्या कर देनेवाले गुरुपुत्र अश्वत्थामाको अर्जुन पकड़कर द्रौपदीके सामने ले आये। द्रौपदीने अश्वत्थामाको देखा। उसका क्रोध अकस्मात् शान्त हो गया। मातृहृदयमें दयाका सागर उमड़ पड़ा। द्रौपदीने अर्जुनसे कहा—'आर्य! इन्हें छोड़ दो, मैं इनके प्राण नहीं चाहती। ये गुरुपुत्र हैं। मेरे पाचों पुत्रोंके मरनेसे जैसे मैं आज शोक-सागरमें डूब रही हूँ, यदि इन्हें मार दिया जायगा तो इनकी माता आपकी गुरुपत्नी भी मेरी ही तरह पुत्र-शोकमें डूब जायँगी। मेरे पुत्र तो लौटकर आते ही नहीं, फिर बदला लेनेकी भावनासे मैं किसी दूसरी माताको मेरी ही भाँति दुखी बना दूँ, मेरा मन ऐसा नहीं चाहता। मैं इन्हें क्षमा करती हूँ। आपलोग भी क्षमा कर दें।'

पाण्डवोंपर द्रौपदीकी क्षमाका बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने गुरुपुत्र अश्वत्थामाको छोड़ दिया। अश्वत्थामा लज्जित होकर वहाँसे चले गये।

सुख-दुःखका साथी तोता

व्याधने जहरसे बुझाया हुआ बाण हरिनोंपर चलाया। निशाना चूककर बाण एक बडे वृक्षमे धँस गया। जहर सारे वृक्षमें फैल गया। पत्ते झड़ गये और वृक्ष सूखने लगा। उस पेड़के खोखलेमें बहुत दिनोंसे एक तोता रहता था। उसका पेड़में बड़ा प्रेम था। अतः पेड़ सूखनेपर भी वह उसे छोड़कर नहीं गया। उसने बाहर निकलना छोड़ दिया और चुगा-पानी न मिलनेसे वह भी सूखकर काँटा हो गया। वह धर्मात्मा तोता अपने साथी वृक्षके साथ ही अपने प्राण देनेको तैयार हो गया। उसकी इस उदारता, धीरज, सुख-दुःखमें समता और त्यागवृत्तिका वातावरणपर बड़ा असर हुआ। देवराज इन्द्रका उसके प्रति आकर्षण हुआ। इन्द्र आये। तोतेने इन्द्रको पहचान लिया। तब इन्द्रने कहा—'प्यारे शुक! इस पेड़पर न पत्ते हैं, न कोई फल। अब कोई पक्षी भी इसपर नहीं रहता। इतना बड़ा जंगल पड़ा है, जिसमें हजारों सुन्दर फल-फूलोंसे लदे हरे-भरे वृक्ष हैं और उनमें पत्तोंसे ढके हुए रहनेके लायक बहुत खोंखले भी हैं। यह वृक्ष तो अब मरनेवाला ही है। यह

अब फल-फूल नहीं सकता। इन बातोंपर विचार करके तुम इस ठूँठे पेड़को छोडकर किसी हरे-भरे वृक्षपर क्यों नहीं चले जाते ?'

धर्मात्मा तोतेने सहानुभूतिकी लंबी साँस छोड़ते हुए दीन वचन कहे—'देवराज ! मैं इसीपर जन्मा था, इसीपर पला और इसीपर अच्छे-अच्छे गुण भी सीखे। इसने सदा बच्चेके समान मेरी देख-रेख की, मुझे मीठे फल दिये और वैरियोंके आक्रमणसे बचाया। आज इसकी बुरी अवस्थामें मैं इसे छोड़कर अपने सुखके लिये कहाँ चला जाऊँ ? जिसके साथ सुख भोगे, उसीके साथ दुःख भी भोगूँगा। मुझे इसमें बड़ा आनन्द है। आप देवताओंके राजा होकर मुझे यह बुरी सलाह क्यों दे रहे हैं ? जब इसमें शक्ति थी, यह सम्पन्न था, तब तो मैंने इसका आश्रय लेकर जीवन धारण किया; आज जब यह शक्तिहीन और दीन हो गया, तब मैं इसे छोडकर चल दूँ ! यह कैसे हो सकता है।'

तोतेकी मधुर मनोहर प्रेमभरी वाणी सुनकर इन्द्रको बड़ा सुख मिला। उन्हें दया आ गयी। वे बोले—'शुक ! तुम मुझसे कोई वर माँगो।' तोतेने कहा—'आप वर देते हैं तो यही दीजिये कि यह मेरा प्यारा पेड़ पूर्ववत् हरा-भरा हो जाय।' इन्द्रने अमृत बरसाकर पेड़को सींच दिया। उसमें फिरसे नयी-नयी शाखाएँ, पत्ते और फल लग गये। वह पूर्ववत् श्रीसम्पन्न हो गया और वह तोता भी अपने इस आदर्श व्यवहारके कारण आयु पूरी होनेपर देवलोकको प्राप्त हुआ।

समताकी परीक्षा

'अरे नामू ! तेरी धोतीमें खून कैसे लग रहा है ?'

'यह तो माँ ! मैंने कुल्हाड़ीसे पगको छीलकर देखा था ।' माँने धोती उठाकर देखा—पैरमें एक जगहकी चमड़ी माससहित छील दी गयी है । नामदेव तो ऐसे चल रहा था मानो उसको कुछ हुआ ही नहीं । नामदेवकी माँने फिर पूछा—

'नामू ! तू बड़ा मूर्ख है । कोई अपने पैरपर भी कुल्हाड़ी चलाया करता है ? पैर टूट जाय तो लँगड़ा होना पड़े । घाव पक जाय या सड़ जाय तो पैर कटवानेकी नौबत आवे ।'

'तब पेड़को भी कुल्हाड़ीसे चोट लगनी चाहिये । उस दिन तेरे कहनेसे मैं पलासके पेड़पर कुल्हाड़ी चलाकर उसकी छाल उतार लाया था । मेरे मनमें आयी कि अपने पैरकी छाल भी उतारकर देखूँ, मुझे कैसी लगती है । पलासके पेड़को कुछ हुआ होगा, यही जाननेके लिये मैंने ऐसा किया, माँ !'

'नामदेवकी माँको याद आया कि मैंने नामदेवको उस दिन काढ़ेके लिये पलासकी छाल लाने भेजा था । नामदेवकी माँ रो पड़ी, उसने कहा—'बेटा नामू ! मालूम होता है तू महान् साधु होगा । पेड़ोंमें और दूसरे जीव-जन्तुओंमें भी मनुष्यके ही जैसा जीव है । अपने चोट लगनेपर दुःख होता है, वैसा ही उनको भी होता है ।'

बड़ा होनेपर यही नामू प्रसिद्ध भक्त नामदेव हुए ।

भक्तका स्वभाव

प्रह्लादने गुरुओंकी बात मानकर हरिनामको न छोड़ा, तब उन्होंने गुस्सेमें भरकर अग्निशिखाके समान प्रज्वलित शरीरवाली कृत्याको उत्पन्न किया। उस अत्यन्त भयंकर राक्षसीने अपने पैरोंकी चोटसे पृथ्वीको कँपाते हुए वहाँ प्रकट होकर बड़े क्रोधसे प्रह्लादजीकी छातीमें त्रिशूलसे प्रहार किया, किंतु उस बालकके हृदयमें लगते ही वह झलझलाता हुआ त्रिशूल टुकड़े-टुकड़े होकर जमीनपर गिर पड़ा। जिस हृदयमें भगवान् श्रीहरि निरन्तर प्रकटरूपसे विराजते हैं, उसमें लगनेसे वज्रके भी टूक-टूक हो जाते हैं, फिर त्रिशूलकी तो बात ही क्या है?

पापी पुरोहितोंने निष्पाप भक्तपर कृत्याका प्रयोग किया था; 'बुरा करनेवालेका ही बुरा होता है, इसलिये कृत्याने उन पुरोहितोंको ही मार डाला। उन्हे मारकर वह स्वयं भी नष्ट हो गयी। अपने गुरुओंको कृत्याके द्वारा जलाये जाते देखकर महामति प्रह्लाद 'हे कृष्ण! रक्षा करो! हे अनन्त! इन्हें बचाओ' ऐसा कहते हुए उनकी और दौड़े।

प्रह्लादजीने कहा—'हे सर्वव्यापी, विश्वरूप, विश्व-स्रष्टा जनार्दन! इन ब्राह्मणोंकी इस मन्त्राग्निरूप भयानक विपत्तिसे रक्षा करो। यदि मैं इस सत्यको मानता हूँ कि सर्वव्यापी जगद्गुरु भगवान् सभी प्राणियोंमें व्याप्त हैं तो इसके प्रभावसे ये पुरोहित जीवित हो जायँ। यदि मैं सर्वव्यापी और अक्षय भगवान्को अपनेसे वैर रखनेवालोंमे भी देखता हूँ तो ये पुरोहितगण जीवित हो जायँ। जो लोग मुझे मारनेके लिये आये, जिन्होंने मुझे जहर दिया, आगमें जलाया, बड़े-बड़े हाथियोंसे कुचलवाया और साँपोंसे डॅसवाया, उन सबके प्रति यदि मेरे मनमें एक-सा मित्रभाव सदा रहा है और मेरी कभी पाप-बुद्धि नहीं हुई है तो इस सत्यके प्रभावसे ये पुरोहित जीवित हो जायँ।'

ऐसा कहकर प्रह्लादने उनका स्पर्श किया और स्पर्श होते ही वे मरे हुए पुरोहित जीवित होकर उठ बैठे और प्रह्लादका मुक्तकण्ठसे गुणगान करने लगे।

संतकी विचित्र असहिष्णुता

एक संत नौकामें बैठकर नदी पार कर रहे थे । शामका वक्त था । आखिरी नाव थी, इससे उसमें बहुत भीड़ थी । संत एक किनारे अपनी मस्तीमें बैठे थे । दो-तीन मनचले आदमियोंने संतका मजाक उड़ाना शुरू किया । संत अपनी मौजमें थे, उनका इधर ध्यान ही नहीं था । उन लोगोंने संतका ध्यान खींचनेके लिये उनके समीप जाकर पहले तो शोर मचाना और गालियाँ बकना आरम्भ किया, जब इसपर भी संतकी दृष्टि नासिकाके अग्रभागसे न हटी, तब वे संतको धीरे-धीरे ढकेलने लगे । पास ही कुछ भले आदमी बैठे थे, उन्होंने उन बदमाशोंको डाँटा और संतसे कहा—'महाराज ! इतनी सहनशीलता अच्छी नहीं है, आपके शरीरमें काफी बल है, आप इन बदमाशोंको जरा-सा डाँट देंगे तो ये अभी सीधे हो जायँगे ।' अब संतकी दृष्टि उधर गयी । उन्होंने कहा—भैया ! सहनशीलता कहाँ है, मैं तो असहिष्णु हूँ, सहनेकी शक्ति तो अभी मुझमें आयी ही

नामनिष्ठा और क्षमा

भक्त हरिदास हरिनामके मतवाले थे। ये जन्मसे मुसलमान थे, पर इनको भगवान्‌का नाम लिये विना चैन नहीं पड़ता था। फुलिया गाँवमें गोराई काजी नामक एक कट्टर मुसल्मान था। उसने हरिदासकी शिकायत मुल्कपतिसे की और कहा—'इस काफिरको ऐसी सजा देनी चाहिये जिससे सब डर जायँ और आगेसे कोई भी ऐसा नापाक काम करनेकी हिम्मत न करे। इसे सीधी चालसे नहीं मारना चाहिये। इसकी पीठपर बेंत मारते हुए इसे बाईस बाजारोंमें घुमाया जाय और बेंत मारते-मारते इसको इतनी पीड़ा हो कि उसीसे यह तड़प-तड़पकर मर जाय।' मुल्कपतिने आदेश दे दिया।

बेंत मारनेवाले जल्लादोंने भक्त हरिदासजीको बाँध लिया और उनकी पीठपर बेंत मारते-मारते उन्हें बाजारोंमें घुमाने लगे। पर

हरिदासजीके मुँहसे हरिनामकी ध्वनि बंद नहीं हुई । जल्लाद कहते —'हरिनाम बद करो ।' हरिदासजी कहते—'भैया ! मुझे एक बेंत मारो, पर तुम हरिनाम लेते रहो; इसी बहाने तुम्हारे मुँहसे हरिका नाम तो निकलेगा ।' बेंतोंकी मारसे हरिदासकी चमड़ी उधड़ गयी । खूनकी धारा बहने लगी । पर निर्दयी जल्लादोंके हाथ बंद नहीं हुए । इधर हरिदासकी नाम-धुन भी बंद नहीं हुई ।

अन्तमें हरिदासजी बेहोश होकर जमीनपर गिर पड़े । जल्लादोंने उन्हे मरा समझकर गङ्गाजीमे बहा दिया । गङ्गाजीके शीतल जल-स्पर्शसे उन्हें चेतना प्राप्त हो गयी और वे बहते-बहते फुलिया गाँवके समीप घाटपर आ पहुँचे । लोगोंने बड़ा हर्ष प्रकट किया । मुलुक-पतिको भी अपने कृत्यपर पश्चात्ताप हुआ । पर लोगोंमें मुलुकपतिके विरुद्ध बड़ा जोश आ गया । इसपर हरिदासजीने कहा—'इसमें इनका क्या अपराध था । मनुष्य अपने कर्मोंका ही फल भोगता है । दूसरे तो उसमें निमित्त बनते हैं । फिर यहाँ तो इनको निमित्त बनाकर मेरे भगवान्‌ने मेरी परीक्षा ली है । नाममें मेरी रुचि है या मैं ढोंग ही करता हूँ । यह जानना चाहा है । मैं तो कुछ था नहीं, उन्हीं-की कृपाशक्तिने मुझे अपनी चेतनाके अन्तिम श्वासतक नामकीर्तनमे दृढ रक्खा । इनका कोई अपराध हो तो भगवान् इनको क्षमा करें ।'

संतकी वाणी सुनकर सभी गद्गद होकर धन्य-धन्य पुकार उठे । मुलुकपति तथा गोराई काजीपर भी बड़ा प्रभाव पड़ा और वे भी नामकीर्तनके प्रेमी बन गये तथा हरिनाम लेने लगे ।

परोपकार और सचाईका फल

दोग्नीवेकी पढ़ाई समाप्त हो गयी। उसका जन्म-दिवस आया। जन्म-दिनके उपलक्ष्यमें उसके यहाँ बहुत कीमती सौगातका ढेर लग गया। उसके पिताने कहा—'बेटा! तुम्हारी पढ़ाई हो गयी, अब तुम्हें संसारमें जाकर धन कमाना चाहिये। अबतक तुम बहुत अच्छे साहसी, बुद्धिमान् और परिश्रमी विद्यार्थी रहे। इतना बड़ा धन तुम्हारे पास हो गया है। मुझे तुम्हारी योग्यतापर विश्वास है। जाओ और संसारमें फलो-फूलो।'

दोग्नीवे प्रसन्न हो उठा। वह अपने माता-पिताको प्रणाम करके अपने सुन्दर जहाजकी ओर चल दिया।

उसका जहाज समुद्रकी छातीपर लहरोंको चीरता हुआ चला जा रहा था। रास्तेमें एक तुर्की जहाज दिखलायी दिया। उसके समीप आनेपर लोगोंका कराहना और चिल्लाना सुनायी दिया। उसने चिल्लाकर तुर्की कप्तानसे पूछा—'भाई! तुम्हारे जहाजमें लोग रो क्यों रहे हैं? लोग भूखे हैं या बीमार?'

विश्वासका फल

एक सच्चा भक्त था, पर था बहुत ही सीधा । उसे छल-कपटका पता नहीं था । वह हृदयसे चाहता था कि मुझे शीघ्र भगवान्‌के दर्शन हों । दर्शनके लिये वह दिन-रात छटपटाता रहता; और जो मिलता, उसीसे उपाय पूछता । एक ठगको उसकी इस स्थितिका पता लग गया। वह साधुका वेश बनाकर आया और उससे बोला—'मैं तुम्हें आज ही भगवान्‌के दर्शन करा दूँगा । तुम अपना सारा सामान बेचकर मेरे साथ जंगलमें चलो ।' भक्त निष्कपट सरल हृदयका था और दर्शनकी चाहसे व्याकुल था । उसको बड़ी खुशी हुई और उसने

उसी समय जो कुछ भी दाममें मिले, उसीपर अपना सारा सामान बेच दिया और रुपये साथ लेकर वह ठगके साथ चल दिया। रास्तेमें एक कुआँ मिला। ठगने कहा, 'बस, इस कुएँमें भगवान्‌के दर्शन होंगे, तुम इन मायिक रुपयोंको रख दो और कुएँमें झाँको।' सरल विश्वासी भक्तने ऐसा ही किया। वह जब कुएँमें झाँकने लगा, तब ठगने एक धक्का दे दिया, जिससे वह तुरंत कुएँमें गिर पड़ा। भगवत्कृपासे उसको जरा भी चोट नहीं लगी और वहीं साक्षात् भगवान्‌के दर्शन हो गये। वह कृतार्थ हो गया।

ठग रुपये लेकर चंपत हो गया था। भगवान्‌ने सिपाहीका वेष धरकर उसे पकड़ लिया और उसी कुएँपर लाकर अंदर पड़े हुए भक्तसे सारा हाल कहा और भक्तको कुएँसे निकालना चाहा। भक्त उस समय भगवान्‌की रूपमाधुरीके सरस रसपानमें मत्त था; उसने कहा—'आप मुझको इस समय न छेड़िये। ये ठग हों या कोई, मेरे तो गुरु हैं। सचमुच ही इन्होंने मेरी मायिक पूँजीको हरकर मुझको श्रीहरिके दर्शन कराये हैं। अतएव आप इन्हें छोड़ दीजिये।' भक्तकी इस बातको सुनकर और सरल विश्वासका ऐसा चमत्कार देखकर ठगके मनमे आया कि सचमुच इसको ठगकर मै ही ठगा गया हूँ। उसे अपने कृत्यपर बड़ी ग्लानि हुई और उसका हृदय पलट गया। भक्त और भगवान्‌के सङ्गका प्रभाव भी था ही। वह भी उसी दिनसे अपना दुष्कृत्य छोड़कर भगवान्‌का सच्चा भक्त बन गया।

मनका भुलावा

एक संत कहीं जा रहे थे । गाँव बहुत दूर था । बड़ी भूख लगी । मनने कहा—'प्रभुसे माँग लो ।' संतने जवाब दिया—'विश्वासी मनुष्यका यह काम नहीं है ।' जब मनकी यह कुचाल विफल हो गयी, तब उसने दूसरी तरहसे जाल बिछाना शुरू किया, मनने कहा—'अच्छी बात है तुम खानेको मत माँगो, परंतु भूखके मारे धीरजको कबतक रख सकोगे ? इसलिये धीरज तो माँग लो ।' संतने कहा—'ठीक है । धीरज माँगनेमें हर्ज नहीं है ।' इतनेहीमें उन्हें अपने अंदर भगवान्‌की यह दिव्य वाणी सुनायी दी—'देख ! धीरजका समुद्र मैं सदा तेरे साथ ही हूँ न ? तू माँगकर अपने विश्वासको क्यों खो रहा है ? क्या मैं बिना माँगे नहीं देता ? भक्तके योगक्षेमका सारा भार उठानेकी तो मैंने घोषणा ही कर रक्खी है ।'

संतका समाधान हो गया । उन्होंने कहा—'सच है ! मैं मनके भुलावेमें आ गया था । भूला था प्रभो ! भूला था ।'

ईश्वरके विधानपर विश्वास

एक अंग्रेज अफसर अपनी नवविवाहिता पत्नीके साथ जहाजमें सवार होकर समुद्र-यात्रा कर रहा था। रास्तेमें जोरसे तूफान आया। मुसाफिर घबरा उठे, पर वह अंग्रेज जरा भी नहीं घबराया। उसकी नयी पत्नी भी व्याकुल हो गयी थी। उसने पूछा—'आप निश्चिन्त कैसे बैठे है?' पत्नीकी बात सुनकर पतिने म्यानसे तलवार खींचकर धीरेसे पत्नीके सिरपर रख दी और हँसकर पूछा कि 'तुम डरती हो या नहीं?' पत्नीने कहा—'मेरी बातका जवाब न देकर यह क्या खेल कर रहे हैं? आपके हाथमें तलवार हो और मैं डरूँ, यह कैसी बात? आप क्या मेरे वैरी हैं, आप तो मुझको प्राणोंसे भी अधिक चाहते हैं!' इसपर अफसरने कहा—'साध्वी! जैसे मेरे हाथमें तलवार है वैसे ही भगवान्के हाथमें यह तूफान है। जैसे तुम मुझे अपना सुहृद् समझकर नहीं डरती, वैसे ही मैं भी भगवान्को अपना परम सुहृद् समझकर नहीं डरता। भगवान्का अपने जीवोंपर अगाध प्रेम है, वे वही करेंगे जो वास्तवमें हमारे लिये कल्याणकारी होगा। फिर डर किस बातका?'

जरा-मृत्यु नहीं टल सकती

राजा जनकने पञ्चशिख मुनिसे वृद्धावस्था और मृत्युसे बचनेका उपाय पूछा। तब पञ्चशिखने कहा—'कोई भी शरीरधारी मनुष्य जरा और मृत्युसे नहीं बच सकता। अज्ञानी मनुष्य जरा-मृत्युरूपी जलचरोंसे भरे हुए कालरूपी सागरमें नित्य ही बिना नावके डूबते-उतराते रहते हैं। इन्हें कोई नहीं बचा सकता। संसारमें कोई किसीका नहीं है। जैसे राहमें चलते हुए यात्रियोंकी एक-दूसरेसे भेंट हो जाती है, संसारमें स्त्री-पुत्र और भाई-बन्धुके सम्बन्धको भी ऐसा ही समझना चाहिये। जैसे गरजते हुए बादलोंको हवा अनायास ही एक जगहसे उड़ाकर दूसरी जगह ले जाती है, वैसे ही भूतप्राणी कालसे प्रेरित होकर हाय-हाय करते हुए मरते और जन्मते रहते हैं। जरा और मृत्यु भेड़ियेकी भाँति दुर्बल और बलवान् तथा नीच और ऊँच सभीको खा जाती हैं इसलिये शरीरका शोक नहीं करना चाहिये।'

कोई घर भी मौतसे नहीं बचा

किसा गौतमीका प्यारा इकलौता पुत्र मर गया। उसको बहुत बड़ा शोक हुआ। वह पगली-सी हो गयी और पुत्रकी लाशको छातीसे चिपटाकर 'कोई दवा दो, कोई मेरे बच्चेको अच्छा कर दो।' चिल्लाती हुई इधर-उधर दौड़ने लगी। लोगोंने बहुत समझाया; परंतु उसकी समझमें कुछ नहीं आया। उसकी बड़ी ही दयनीय स्थिति देखकर एक सज्जनने उसे भगवान् बुद्धके पास यह कहकर भेज दिया कि 'तुम सामनेके विहारमें भगवान्‌के पास जाकर दवा माँगो, वे निश्चय ही तुम्हारा दुःख मिटा देंगे।'

किसा दौड़ी हुई गयी और बच्चेको जिलानेके लिये भगवान् बुद्धसे रो-रोकर प्रार्थना करने लगी।

भगवान्‌ने कहा—'बड़ा अच्छा किया, तुम यहाँ आ गयी। बच्चेको मैं जिला दूँगा। तुम गाँवमें जाकर, जिसके घरमें आजतक कोई भी मरा न हो, उससे कुछ सरसोंके दाने माँग लाओ।'

किसा बच्चेकी लाशको छातीसे चिपकाये दौड़ी और लोगोंसे सरसोंके दाने माँगने लगी; जब किसीने देना चाहा तब उसने कहा—'तुम्हारे घरमें आजतक कोई मरा तो नहीं है न? मुझे उसीसे सरसों लेनी है जिस घरमे कभी कोई मरा न हो।' उसकी इस बातको सुनकर घरवालेने कहा—'भला, ऐसा भी कोई घर होगा जिसमे कोई मरा न हो—मनुष्य तो हर घरमें मरते ही हैं।'

वह घर-घर फिरी, पर सभी जगह एक ही जवाब मिला, तब उसकी समझमे आया कि मरना तो हर घरका रिवाज है। जो जन्मता है, वह मरता ही है। मृत्यु किसी भी उपायसे टलती नहीं। टलती होती तो क्यों कोई अपने प्यारेको मरने देता? एक घरमें ही नहीं—जगत्‌भरमें सभी जगह मृत्युका विस्तार है। बस, जब यह बात ठीक-ठीक समझमें आ गयी, तब उसने बच्चेकी लाशको ले जाकर श्मशानमें गाड़ दिया और लौटकर भगवान् बुद्धसे सारी बात कह दी। भगवान्‌ने उसे फिर समझाया कि 'देखो—यहाँ जो जन्म लेता है उसे मरना ही पड़ेगा। यही नियम है। जैसे हमारे घरके मरते हैं, वैसे ही हम भी मर जायँगे। इसलिये मृत्युका शोक न करके उस स्थितिकी खोज करनी चाहिये, जिसमे पहुँच जानेपर जन्म ही न हो। जन्म न होगा तो मृत्यु आप ही मिट जायगी। बस, समझदार आदमीको यही करना चाहिये।'

अद्भुत त्याग

श्रीचैतन्य महाप्रभुका गृहस्थाश्रमका नाम था निमाई पण्डित । एक दिन वे नौकासे कहीं जा रहे थे । उनके हाथमें उनके द्वारा लिखित न्यायका हस्तलिखित ग्रन्थ था । उसी नावपर उनके सहपाठी तथा सुहृद् श्रीरघुनाथ पण्डित भी थे । बातों-ही-बातोंमें ग्रन्थकी बात चली । रघुनाथके कहनेपर निमाई उन्हें अपना ग्रन्थ सुनाने लगे । रघुनाथ ज्यों-ज्यों सुनते थे, त्यों-ही-त्यों उनका विषाद बढ़ता जाता था । अन्तमें वे विवश होकर फूट-फूटकर रोने लगे । निमाईने आश्चर्य प्रकट करते हुए इसका कारण पूछा । रघुनाथने रुँधे कण्ठसे कहा—'भाई ! मैंने बड़े परिश्रमसे 'दीधीति' नामक ग्रन्थ लिखा है । मैं समझता था, मेरा यह ग्रन्थ अर्वाचीन न्यायके ग्रन्थोंमें सर्वप्रधान होगा । पर तुम्हारे इस ग्रन्थको देखकर तो मेरी सारी आशा मिट्टीमें मिल गयी । तुम्हारे इस ग्रन्थके सामने मेरी पोथीको कौन पूछेगा ? इसी मनोव्यथाके कारण मुझे रुलाई आ रही है ।'

निमाई पण्डितने बड़े जोरसे हँसकर कहा—'इस साधारण-सी पोथीको देखकर तुम्हें इतना क्लेश हो गया ! तुम्हारे सुखके लिये मेरे प्राण प्रस्तुत हैं, इस पोथीकी तो बात ही क्या है ! लो, अभी इसे नष्ट किये देता हूँ ।' इतना कहकर जगत्प्रसिद्ध 'दीधीति' को भी लजा देनेवाले अपने बड़े परिश्रमसे लिखे हुए उस ग्रन्थका एक-एक पन्ना उन्होंने गङ्गाजीकी धारामें बहा दिया ! पुस्तकके पन्ने लहरोंके साथ नाच-नाचकर निमाईके त्यागका गीत गा रहे थे ।

रघुनाथ पण्डित निमाईके त्यागको देखकर दंग रह गये !

रामकी तीर्थयात्रा

एक संत किसी प्रसिद्ध तीर्थस्थानपर गये थे। वहाँ एक दिन वे तीर्थ-स्नान करके रातको मन्दिरके पास सोये थे। उन्होंने स्वप्नमें देखा—दो तीर्थ-देवता आपसमें बातें कर रहे हैं। एकने पूछा—

'इस वर्ष कितने नर-नारी तीर्थमें आये?'

'लगभग छः लाख आये होंगे।' दूसरेने उत्तर दिया।

'क्या भगवान्‌ने सबकी सेवा स्वीकार कर ली?'

तीर्थके माहात्म्यकी बात तो जुदी है, नहीं तो, उनमें बहुत ही कम ऐसे होंगे जिनकी सेवा स्वीकृत हुई हो।'

'ऐसा क्यों?'

'इसीलिये कि भगवान्‌में श्रद्धा रखकर पवित्र भावसे तीर्थ

होती है । (इतना कहते-कहते वह गद्गद हो गया, फिर बोला—) महाराज ! मेरे मनमें वर्षोंसे तीर्थयात्राकी चाह थी । बहुत मुश्किलसे पेटको खाली रख-रखकर मैंने कुछ पैसे बचाये थे, मैं तीर्थ-यात्राके लिये जानेवाला ही था कि मेरी स्त्री गर्भवती हो गयी । एक दिन पड़ोसीके घरसे मेथीकी सुगन्ध आयी, मेरी स्त्रीने कहा—'मेरी इच्छा है मेथीका साग खाऊँ, पड़ोसीके यहाँ बन रहा है, जरा माँग लाओ ।' मैंने जाकर साग माँगा । पड़ोसिन बोली—'ले जाइये परंतु है यह बहुत अपवित्र । हमलोग सात दिनोंसे सब-के-सब भूखे थे, प्राण जा रहे थे । एक जगह एक मुर्देपर चढ़ाकर साग फेंका गया था वही मेरे पति बीन लाये । उसीको मैं पका रही हूँ ।' (रामू फिर गद्गद होकर कहने लगा—) मैं उसकी बात सुनकर काँप गया । मेरे मनमें आया, पड़ोसी सात-सात दिनोंतक भूखे रहें और हम पैसे बटोरकर तीर्थयात्रा करने जायँ ? यह तो ठीक नहीं है । मैंने बटोरे हुए सब पैसे आदरके साथ उनको दे दिये । वह परिवार अन्न-वस्त्रसे सुखी हो गया । रातको भगवान्ने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—'बेटा तुझे सब तीर्थोंका फल मिल गया, तुझपर मेरी कृपा बरसेगी ।' महाराज ! तबसे मैं सचमुच सुखी हो गया । अब मैं तीर्थस्वरूप भगवान्को अपनी आँखोंके सामने ही निरन्तर देखा करता हूँ और बड़े आनन्दसे दिन कट रहे हैं ।'

रामूकी बात सुनकर संत रो पड़े । उन्होंने कहा—सचमुच तीर्थयात्रा तो तैंने ही की है ।

सच्चा साधु—भिखारी

एक साधुने ईश्वरप्राप्तिकी साधनाके लिये कठिन तप करते हुए छः वर्ष एकान्त गुफामें बिताये और प्रभुसे प्रार्थना की कि 'हे प्रभो ! मुझे अपने आदर्शके समान ही ऐसा कोई उत्तम महापुरुष बतलाइये, जिसका अनुकरण करके मैं अपने साधनपथमें आगे बढ़ सकूँ ।'

साधुने जिस दिन ऐसा चिन्तन किया उसी दिन रात्रिको एक देवदूतने आकर उससे कहा—'यदि तेरी इच्छा सद्गुणों और पवित्रतामें सबका मुकुटमणि बननेकी हो तो उस मस्त भिखारीका अनुकरण कर जो कविता गाता हुआ इधर-उधर भटकता और भीख माँगता फिरता है ।' देवदूतकी बात सुनकर तपस्वी साधु मनमें जल उठा, परंतु देवदूतका वचन समझकर क्रोधके आवेशमें ही उस भिखारीकी खोजमें चल दिया और उसे खोजकर बोला कि 'भाई ! तूने ऐसे कौन-से सत्कर्म किये हैं, जिनके कारण ईश्वर तुझपर इतने अधिक प्रसन्न हैं ?'

उसने तपस्वी साधुको नमस्कार करके कहा—'पवित्र महात्मा ! मुझसे दिल्लगी न कीजिये । मैंने न तो कोई सत्कर्म किया, न कोई तपस्या की और न कभी प्रार्थना ही की ! मैं तो कविता गा-गाकर लोगोंका मनोरञ्जन करता हूँ और ऐसा करते जो रूखा-सूखा टुकड़ा मिल जाता है, उसीको खाकर संतोष मानता हूँ ।' तपस्वी साधुने फिर आग्रहपूर्वक कहा—'नहीं, नहीं, तूने कोई सत्कार्य अवश्य किया है ।' भिखारीने नम्रतासे कहा, 'महाराज ! मैंने कोई सत्कार्य किया हो, ऐसा मेरी जानमें तो नहीं है ।'

इसपर साधुने उससे फिर पूछा, अच्छा बता, तू भिखारी कैसे

बना ? क्या तूने फिजूलखर्चीमें पैसे उड़ा दिये, अथवा किसी दुर्व्यसनके कारण तेरी ऐसी हालत हो गयी ?'

भिखारी कहने लगा—'महाराज ! न मैंने फिजूल-खर्चीमें पैसे उड़ाये और न किसी व्यसनके कारण ही मैं भिखारी बना। एक दिनकी बात है, मैंने देखा एक गरीब स्त्री घबरायी हुई-सी इधर-उधर दौड़ रही है, उसका चेहरा उतरा हुआ है। पता लगानेपर मालूम हुआ कि उसके पति और पुत्र कर्जके बदलेमें गुलाम बनाकर बेच दिये गये हैं। बहुत खूबसूरत होनेके कारण कुछ लोग उसपर भी अपना कब्जा करना चाहते हैं। यह जानकर मैं उसे ढाढ़स देकर अपने घर ले आया और उसकी उनके अत्याचारसे रक्षा की। फिर मैंने अपनी सारी सम्पत्ति साहूकारोंको देकर उसके पति-पुत्रोंको गुलामीसे छुड़ाया और उनको उससे मिला दिया। इस प्रकार मेरी सारी सम्पत्ति चली जानेसे मैं दरिद्र हो गया और आजीविकाका कोई साधन न रहनेसे मैं अब कविता गा-गाकर लोगोंको रिझाता हूँ और इसीसे जो टुकड़ा मिल जाता है उसीको लेकर आनन्द मानता हूँ। पर इससे क्या हुआ ? ऐसा काम क्या और लोग नहीं करते ?'

भिखारीकी कथा सुनते-ही तपस्वी साधुकी आँखोंसे मोती-जैसे आँसू झड़ने लगे और वह उस भिखारीको हृदयसे लगाकर कहने लगा—'मैंने अपनी जिन्दगीमे तेरे-जैसा कोई काम नहीं किया। तू सचमुच आदर्श साधु है।'

दीपक जलाकर देखो तो

युद्धके समय एक सैनिकका अनुभव

युद्धके समय अपरिचित देशोंमें मैं एक अनाथ शिशुकी तरह अकेले रह रहा था। फिर भी मैं सदा सुखी और स्वस्थ रहा एवं मैंने नित्य अपनेको सुरक्षित पाया।

कुछ दिनों पूर्व, मानो मेरी श्रद्धाको कसौटीपर कसनेके लिये, ठीक मेरे मुँहपर अचानक एक फोड़ा निकल आया। अपने काममें मुझे सदा भरे समाजके सामने रहना पड़ता था। मैं डरा, घबराया और किंकर्तव्य विमूढ़-सा हो गया। सबने सलाह दी कि डाक्टरको

अवश्य दिखाना चाहिये। मेरा कोई परिचित डाक्टर नहीं था। एक डाक्टरने, जो हमारे पुस्तकालय और पुस्तकोंकी दूकानके संरक्षक भी थे, इस बढ़ते हुए सूजन भरे फसादको देखा। उन्होंने दूसरे दिन तड़के ही इसे चीर देनेका निश्चय कर लिया।

मैंने अपने किंवाड़ बंद कर लिये, अपने रहनेके कमरेमें चला गया और प्रभुको पुकारा। मैंने सच्ची प्रार्थना की। उस प्रार्थनामें मेरे हृदय और आत्माका अभूतपूर्व संयोग था। अपने एकान्त घरमें, प्रभुके साथ निश्छल हृदयसे घंटो बातें करते-करते थककर मैं सो गया। या तो मैं स्वप्न देख रहा था, अथवा कोई मुझसे कह रहा था—'दीपक जलाकर दर्पणमे देखो तो!' सुननेके साथ ही मैंने अद्भुत शान्ति, चेतनता और सुखका अनुभव किया। एक स्वप्नके व्यापारकी तरह मैं जाग पड़ा। मेरा हाथ ठीक दीपकपर गया और मैंने उसे जला दिया। जब मैंने दर्पणमें देखा तो मेरा चेहरा पहलेकी तरह चिकना, स्वच्छ और बिल्कुल साफ दिखायी दिया। सारा दोष और रोग छूमंतर हो गया था।

फिर तो मैंने अपने प्रार्थना-विटपके इस फलको देखकर भगवान्‌को न जाने कितना धन्यवाद दिया। प्रातःकाल जब डाक्टर साहिब आये तो उनको अपनी आँखोंपर विश्वास ही नहीं होता था। मेरे दूसरे मित्रोंकी भी यही दशा थी।

भगवान्‌की प्रत्यक्ष कृपा

'श्रीयुत ……रिटायर्ड तहसीलदार और उनकी धर्मपत्नी प्रारम्भसे ही भगवान्‌पर अटल विश्वास तथा श्रद्धा रखते हैं। वास्तवमें उनका सम्पूर्ण जीवन भगवद्भक्तिमें ही व्यतीत हुआ है। कुछ वर्ष पहले उनके ज्येष्ठ पुत्र एक परीक्षामे सम्मिलित हुए थे। उसमें वे उत्तीर्ण भी हो गये। परीक्षाके प्रारम्भकालमें तहसीलदार साहब और उनकी पत्नी घरपर उपस्थित न थे; किंतु जिस समय वे लौटकर आये, उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके पुत्रकी स्मरणशक्ति अधिक परिश्रमके कारण मन्द हो गयी है। उन्होंने दो पर्चे भी खराब कर दिये हैं। यह जानकर दम्पतिको विशेष दुःख हुआ। उन्होंने पुत्रकी सफलताके निमित्त भक्तवत्सल भगवान्‌से प्रार्थना की। परिणामस्वरूप इसके अनन्तर जबतक पुत्रकी परीक्षा होती रही, तहसीलदार साहबको प्रतिदिन परीक्षासे तीन घंटे पहले ही ध्यानावस्थामें मालूम होता कि उनके कानोंमें कोई पर्चा प्रश्नवार बतला रहा है, जिसको वे अपने पुत्रको बतला दिया करते थे और वे उसको परीक्षासे पहले याद कर लिया करते थे। इस प्रकार सभी पर्चे समाप्त हो गये। पुत्रको पिताके बताये तथा परीक्षकके प्रश्नोंमें कभी कोई अन्तर न मिला।

गाली लेनेसे लगती है

एक ब्राह्मणका कोई सम्बन्धी भगवान् बुद्धका शिष्य हो गया था। इससे उस ब्राह्मणको बड़ा दुःख था। एक दिन वह बुद्धदेवके पास जाकर उन्हें मनमानी गालियाँ बकने लगा। बुद्धदेव शान्तभावसे चुपचाप सुनते रहे। ब्राह्मण भी गाली बकते-बकते आखिर थककर चुप हो गया। ब्राह्मणको शान्त देखकर भगवान् बुद्धने उससे पूछा—'क्यों भाई! तुम्हारे घर भी कभी कोई मेहमान आया करते हैं क्या?' ब्राह्मणने कहा—'हाँ, कभी-कभी हमारे सगे-सम्बन्धी आया करते हैं।' 'तो तुम उन लोगोंको खिलाने-पिलानेकी चीजें तो देते ही होगे?' बुद्धदेवने पूछा। ब्राह्मणने 'हाँ' कहा। बुद्धदेवने फिर पूछा 'अच्छा, तुम्हारे वे अतिथि तुम्हारी दी हुई वस्तुएँ न लें तो फिर उनका क्या होता है?' ब्राह्मणने कहा—'इसमें भी कोई पूछनेकी बात है? अरे! मेहमानने नहीं ली तो हमारी चीज हमारे घर रह गयी!' तब भगवान् बुद्धने कहा—'भाई! बस, इसी तरह तुमने जो गालियाँ मुझको दीं, उनको मैंने लिया नहीं। मैं यदि तुमपर क्रोध करता तो तुम्हें बदलेमें गालियाँ देता। इसका सीधा मतलब यह होता कि मैंने तुम्हारी गालियाँ ले लीं। परंतु मैं चुपचाप बैठा रहा इसलिये तुम्हारी गालियोंको मैंने स्वीकार नहीं किया। फलतः तुम्हारा यह उपहार तुम्हारे ही पास रह गया!'

ब्राह्मण लज्जित होकर भगवान् बुद्धका शिष्य बन गया।

शान्त ही सच्चा वीर है

प्रसिद्ध बादशाह हारून-अल-रशीद्के एक लड़केने एक दिन आकर अपने पितासे कहा कि 'अमुक सेनापतिके लड़केने मुझको माँकी गाली दी है।' हारूनने अपने मन्त्रियोंसे पूछा कि 'इस मामलेमें क्या करना उचित है?' किसीने कहा 'उसे तुरंत मार डालना चाहिये', किसीने कहा 'उस बदमाशकी जीभ निकाल लेनी चाहिये' किसीने कहा 'उसे दण्ड देकर देशनिकाला दे देना चाहिये।' इसपर हारूनने अपने पुत्रसे कहा—'बेटा! तू यदि अपराधीको क्षमा कर सके तब तो सबसे अच्छी बात है। क्रोधका कारण उपस्थित रहनेपर भी जो पुरुष शान्त रहकर बातचीत कर सकता है, वही सच्चा वीर है। परंतु यदि तुझमें ऐसी शक्ति न हो तो तू भी उसे वही गाली दे सकता है; परंतु यह क्या तुझे शोभा देगा?'

नीच गुरु

एक सुन्दरी बालविधवाके घरपर उसका गुरु आया। विधवा देवीने श्रद्धा-भक्तिके साथ गुरुको भोजनादि कराया। तदनन्तर उसके सामने धर्मोपदेश पानेके लिये बैठ गयी। गुरुके मनमें उसके रूप-यौवनको देखकर पाप आ गया और उसने उसको अपने कपटजालमें फँसानेके लिये भाँति-भाँतिकी युक्तियोंसे आत्मनिवेदनका महत्त्व बतलाकर यह समझाना चाहा कि जब वह उसकी शिष्या है तो आत्मनिवेदन करके अपनी देहके द्वारा उसे गुरुकी सेवा करनी चाहिये। गुरु खूब पढ़ा-लिखा था, इससे उसने बहुत-से तर्कोंके द्वारा शास्त्रोंके प्रमाण दे-देकर यह सिद्ध किया कि यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो गुरु-कृपा नहीं होगी और गुरु-कृपा न होनेसे नरकोंकी प्राप्ति होगी। विधवा देवी बड़ी

बुद्धिमती, विचारशीला और अपने सतीधर्मकी रक्षामें तत्पर थी । वह गुरुके नीच अभिप्रायको समझ गयी। उसने बड़ी नम्रताके साथ कहा—'गुरुजी ! आपकी कृपासे मैं इतना तो जान गयी हूँ कि गुरुकी सेवा करना शिष्याका परम धर्म है, परंतु भाग्यहीनताके कारण मुझे सेवाका कोई अनुभव नहीं है । इसीसे मैं यथासाध्य गुरुके चरणकमलोंको हृदयमें विराजित करके अपने चक्षु-कर्णादि इन्द्रियोंसे उनकी सेवा करती हूँ । आँखोंसे उनके स्वरूपके दर्शन, कानोंसे उनके उपदेशामृतका पान आदि करती हूँ । सिर्फ दो नीच इन्द्रियोंको, जिनसे मल-मूत्र बहा करता है, मैंने सेवामें नहीं लगाया; क्योंकि गुरुकी सेवामें उन्हीं चीजोंको लगाना चाहिये जो पवित्र हों। मल-मूत्रके गड्ढेमें मैं गुरुको कैसे बिठाऊँ! इसीसे उन गंदे अङ्गोंको कपड़ोंसे ढके रखती हूँ कि कहीं पवित्र गुरु-सेवामें बाधा न आ जाय । इतने-पर भी यदि गुरु-कृपा न हो तो क्या उपाय है। पर सच्चे गुरु ऐसा क्यों करने लगे ? जो गुरु मल-मूत्रकी चाह करते हैं, जो गुरु भक्तिरूपी सुधा पाकर भी मूत्राशयकी ओर ललचायी आँखोंसे देखते हैं, जो गुरु शिष्याके चेहरेकी ओर दयादृष्टिसे न देखकर नरकके मुख्य द्वार—नरक बहानेवाली दुर्गन्धियुक्त नालियोंकी ओर ताकते हैं, ऐसे गुरुके प्रति आत्मनिवेदन न करके उसके मुँहपर तो कालिख ही पोतनी चाहिये और झाड़ुओंसे उसका सत्कार करना चाहिये।'

गुरुजी चुपचाप चल दिये ।

रूप—नादमें देख लो

किसी गाँवमें एक गरीब विधवा ब्राह्मणी रहती थी। तरुणी थी। सुन्दर रूप था। घरमें और कोई न था। गाँवका जमींदार दुराचारी था। उसने ब्राह्मणीके रूपकी तारीफ सुनी। वह उसके घर आया। ब्राह्मणी तो उसे देखते ही काँप गयी। उसी समय भगवान्‌की कृपासे उसे एक युक्ति सूझी। उसने दूर हटते हुए हँसकर कहा—'सरकार! मुझे छूना नहीं। मैं मासिक धर्मसे हूँ। चार दिन बाद आप पधारियेगा।' जमींदार संतुष्ट होकर लौट गया।

ब्राह्मणीने जमालगोटा मँगवाया और उसे खा लिया। उसे दस्त होने लगे दिन-रातमें सैकड़ों बार। उसने मकानके चौकमें एक मिट्टीकी नाद रखवा ली और वह उसीमें टट्टी फिरने लगी। सैकड़ों दस्त होनेसे उसका शरीर घुल गया। आँखें धँस गयीं। मुखपर झुर्रियाँ पड़ गयीं। बदन काला पड़ गया। शरीर काँपने लगा, उठने-बैठनेकी ताकत नहीं रही, देह सूख गयी। उसका सर्वथा रूपान्तर हो गया और वह भयानक प्रतीत होने लगी।

चार दिन बाद जमींदार आया। तरुणी सुन्दरी ब्राह्मणीका पता पूछा। चारपाईपर पड़े कंकालसे क्षीण आवाज आयी। 'मैं ही वह ब्राह्मणी हूँ।' जमींदारने मुँह फिरा लिया और पूछा—'तेरा यह क्या हाल हो गया। वह रूप कहाँ चला गया?' क्षीण उत्तर मिला—'जाकर उस नादमे देख लो। सारा रूप उसीमें भरा है।' मूर्ख जमींदार नादके पास गया, दुर्गन्धके मारे उसकी नाक फटने लगी। वह तुरंत लौट गया।

अच्छा पैसा ही अच्छे काममें लगता है

अबुल अब्बास ईश्वरविश्वासी त्यागी महात्मा थे, वे किसीसे भीख नहीं माँगते, टोपी सीकर अपना गुजारा करते। एक टोपीकी कीमत सिर्फ दो पैसे लेते। इनमेंसे, जो याचक पहले मिलता, उसे एक पैसा दे देते। बचे हुए एक पैसेसे पेट भरते। इस प्रकार जबतक दोनों पैसे बरत नहीं लिये जाते, तबतक नयी टोपी नहीं सीते। भजन ही करते रहते।

इनके एक धनी शिष्य था, उसके पास धर्मादेकी निकाली हुई कुछ रकम थी। उसने एक दिन पूछा, 'भगवन्! मैं किसको दान करूँ?' महात्माने कहा, 'जिसे सुपात्र समझो, उसीको दान करो।' शिष्यने रास्तेमें एक गरीब अंधेको देखा और उसे सुपात्र समझकर एक सोनेकी मोहर दे दी। दूसरे दिन उसी रास्तेसे शिष्य फिर निकला। पहले दिनवाला अंधा एक दूसरे अंधेसे कह रहा था कि 'कल एक आदमीने मुझको एक सोनेकी मोहर दी थी, मैंने उससे खूब शराब पीया और रातको अमुक वेश्याके यहाँ जाकर आनन्द लूटा।'

शिष्यको यह सुनकर बड़ा खेद हुआ। उसने महात्माके पास आकर सारा हाल कहा। महात्मा उसके हाथमें एक पैसा देकर

बोले—'जा जो सबसे पहले मिले, उसीको पैसा दे देना।' यह पैसा टोपी सीकर कमाया हुआ था।

शिष्य पैसा लेकर निकला, उसे एक मनुष्य मिला; उसने उसको पैसा दे दिया और उसके पीछे-पीछे चलना शुरू किया। वह मनुष्य एक निर्जन स्थानमें गया और उसने अपने कपड़ोंमें छिपाये हुए एक मरे पक्षीको निकालकर फेंक दिया। शिष्यने उससे पूछा कि 'तुमने मरे पक्षीको कपड़ोंमें क्यों छिपाया था और अब क्यों निकालकर फेंक दिया?' उसने कहा—'आज सात दिनसे मेरे कुटुम्बको दाना-पानी नहीं मिला। भीख माँगना मुझे पसंद नहीं, आज इस जगह मरे पक्षीको पड़ा देख मैंने लाचार होकर अपनी और परिवारकी भूख मिटानेके लिये उठा लिया था और इसे लेकर मै घर जा रहा था। आपने मुझे बिना ही माँगे पैसा दे दिया, इसलिये अब मुझे इस मरे पक्षीकी जरूरत नहीं रही। अतएव जहाँसे उठाया था, वहीं लाकर डाल दिया।'

शिष्यको उसकी बात सुनकर बड़ा अचरज हुआ। उसने महात्माके पास जाकर सब वृत्तान्त कहा। महात्मा बोले—'यह स्पष्ट है कि तुमने दुराचारियोंके साथ मिलकर अन्यायपूर्वक धन कमाया होगा; इसीसे उस धनका दान दुराचारी अंधेको दिया गया और उसने उससे सुरापान और वेश्या-गमन किया। मेरे न्यायपूर्वक कमाये हुए एक पैसेने एक कुटुम्बको निषिद्ध आहारसे बचा लिया। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। अच्छा पैसा ही अच्छे काममें लगता है।'

हककी रोटी

एक राजाके यहाँ एक संत आये। प्रसंगवश बात चल पड़ी हककी रोटीकी। राजाने पूछा—'महाराज! हककी रोटी कैसी होती है?' महात्माने बतलाया कि 'आपके नगरमें अमुक जगह अमुक बुढ़िया रहती है, उसके पास जाकर पूछना चाहिये और उससे हककी रोटी माँगनी चाहिये।'

राजा पता लगाकर उस बुढ़ियाके पास पहुँचे और बोले—'माता! मुझे हककी रोटी चाहिये।'

बुढ़ियाने कहा—'राजन्! मेरे पास एक रोटी है, पर उसमें आधी हककी है और आधी बेहककी।' राजाने पूछा—'आधी बेहककी कैसे?

बुढ़ियाने बताया—'एक दिन मैं चरखा कात रही थी। शामका वक्त था। अँधेरा हो चला था। इतनेमें उधरसे एक जुलूस निकला। उसमें मशालें जल रही थीं। मैं अलग अपनी चिराग न जलाकर उन मशालोंकी रोशनीमें कातती रही और मैंने आधी पूनी कात ली। आधी पूनी पहलेकी कती थी। उस पूनीसे आटा लाकर रोटी बनायी। इसलिये आधी रोटी तो हककी है और आधी बेहककी। इस आधीपर उस जुलूसवालेका हक है।'

राजाने सुनकर बुढ़ियाको सिर नवाया।

मन्त्रीने उठकर सम्राट्का स्वागत किया। अपनी चिन्ताका कारण बतलाते हुए मन्त्रीने कहा—'गत वर्षकी अपेक्षा इस वर्ष लगानकी वसूलीके आँकड़े कुछ ज्यादा थे, इसलिये मैंने स्वयं ही इसकी जाँच करनेका निश्चय किया।'

'इस वर्ष लगान अधिक आया है, इसका तो मुझे भी पता है, परंतु ऐसा क्यों हुआ, यह मालूम नहीं।' सम्राट्ने यह कहकर आयमन्त्रीकी बातका समर्थन किया।

'उस कारणको खोज निकालनेके लिये ही मैं जागरण कर रहा हूँ सरकार! सारे बहीखाते उलट डाले, कहीं खास परिवर्तन नहीं मालूम हुआ। संवत् भी बहुत अच्छा नहीं था।' आयमन्त्रीने असल बात कहनी शुरू की।

'तो हिसाबमें भूल हुई होगी।'

'हिसाब भी जाँच लिया। जोड़-बाकी सब ठीक हैं।'

'तब तुम जानो और तुम्हारा काम जाने। लगान तो बढ़ा ही है न? इसमें चिन्ताकी कौन-सी बात है? रात बहुत चली गयी है, अब इस बखेड़ेको कलपर रक्खो। सम्राट्ने उकताकर मुँह फेर लिया।

'आमदनी बढ़ी है यह ठीक है, परंतु यही तो साम्राज्यके लिये चिन्ताका कारण है। लगानकी कमी सही जा सकती है, परंतु अन्यायकी अगर एक कौड़ी भी खजानेमें आ जाती है तो वह सारे साम्राज्यके अङ्गोंसे फूट-फूटकर निकलती है।' आयमन्त्रीने अपने

उद्वेगका इतिहास धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया। 'सरकार! यहाँ भी ऐसा ही हुआ है। किसानोंके पैदायश नाममात्रकी है। गयी साल गरमी बहुत पड़ी थी, इससे गङ्गा-यमुना-जैसी भरी-पूरी नदियोंका जल भी सूख चला था। जल सूख जानेसे किनारेकी जमीन निकल आयी थी। इस जमीनमे लोगोंने कुछ बाड़े बनाये और उन्हींके द्वारा सरकारी खजानेमें कुछ धन ज्यादा आया। आमदनी बढ़नेका यही गुप्त रहस्य है।'

'नदियाँ सूख गयीं, जल दूर चला गया और लगान बढ़ा।' मन्त्रीकी चिन्ताने सम्राट्के दिलपर भी चिन्ताका चेप लगा दिया। कुछ देरतक इन्हीं शब्दोंको वह रटता रहा।

'नदीका जल सूखना भी तो एक ईश्वरीय कोप है। इस कोपको सिर लेकर लगानकी मौज उड़ानेवाली बादशाही कबतक टिकी रह सकती है? यह अन्यायका पैसा है। मेरे खजानेमें ऐसी एक कौड़ी भी नहीं चाहिये। सम्राट्ने अपनी आज्ञा सुना दी। आयमन्त्रीकी चिन्ता अकारण नहीं थी, सम्राट्को इसका अनुभव हुआ।

'इन गरीब प्रजाका लगान लौटा दो और मेरी ओरसे उनसे कहला दो कि वे रात-दिन गङ्गा-यमुनाको भरी-पूरी रखनेके लिये ही भगवान्से प्रार्थना करें। लगानकी बढ़ती नहीं, परंतु यह न्यायकी वृत्ति ही इस साम्राज्यकी मूल भित्ति है।' सम्राट्ने जाते-जाते यह कहा। धन्य!

गरीबके दानकी महिमा

गुजरातकी प्रसिद्ध राजमाता मीणल देवी बड़ी उदार थी। वह सवा करोड़ सोनेकी मोहरें लेकर सोमनाथजीका दर्शन करने गयी। वहाँ जाकर उसने स्वर्ण-तुलादान आदि दिये। माताकी यात्राके पुण्य-प्रसंगमें पुत्र राजा सिद्धराजने प्रजाको लाखों रुपयेका लगान माफ कर दिया। इससे मीणलके मनमें अभिमान आ गया कि मेरे समान दान करनेवाली जगत्‌में दूसरी कौन होगी। रात्रिको भगवान् सोमनाथजीने स्वप्नमें कहा—'मेरे मन्दिरमें एक बहुत गरीब स्त्री यात्रा करने आयी है, तू उससे उसका पुण्य माँग।'

सवेरे मीणल देवीने सोचा, 'इसमें कौन-सी बड़ी बात है। रुपये देकर पुण्य ले लूँगी।' राजमाताने गरीब स्त्रीकी खोजमें आदमी भेजे। वे एक यात्रामें आयी हुई गरीब ब्राह्मणीको ले आये। राजमाताने उससे कहा—'तेरा पुण्य मुझे दे दे और बदलेमें तेरी इच्छा हो उतना धन ले ले।' उसने किसी तरह भी स्वीकार नहीं किया। तब राजमाताने कहा—'तूने ऐसा क्या पुण्य किया है—मुझे बता तो सही।'

ब्राह्मणीने कहा—मैं घरसे निकलकर सैकड़ों गाँवोंमें भीख माँगती हुई यहाँतक पहुँची हूँ। कल तीर्थका उपवास था। आज किसी पुण्यात्माने मुझे जैसा-तैसा थोड़ा-सा बिना नमकका सत्तू दिया। उसके आधे हिस्सेसे मैंने भगवान् सोमेश्वरकी पूजा की। आधेमेंसे आधा एक अतिथिको दिया और शेष बचे हुएसे मैंने पारण किया। मेरा पुण्य ही क्या है। आप बड़ी पुण्यवती हैं, आपके पिता, भाई, स्वामी और पुत्र सभी राजा हैं। यात्राकी खुशीमें आपने प्रजाका लगान माफ करवा दिया। सवा करोड़ मोहरोंसे शङ्करकी पूजा

की। इतना बड़ा पुण्य करनेवाली आप मेरा अल्प-सा दीखनेवाला पुण्य क्यों माँग रही हैं? मुझपर कोप न करें तो मैं निवेदन करूँ।'

राजमाताने क्रोध न करनेका विश्वास दिलाया। तब ब्राह्मणीने कहा—'सच पूछें तो मेरा पुण्य आपके पुण्यसे बहुत बड़ा हुआ है। इसीसे मैंने रुपयोंके बदलेमें इसे नहीं दिया। देखिये—१. बहुत सम्पत्ति होनेपर भी नियमोंका पालन करना, २. शक्ति होनेपर भी सहन करना, ३. जवान उम्रमे व्रतोंको निबाहना और ४. दरिद्र होकर भी दान करना—ये चार बातें थोड़ी होनेपर भी इनसे बड़ा लाभ हुआ करता है।'

ब्राह्मणीकी इन बातोंसे राजमाता मीणल देवीका अभिमान नष्ट हो गया। शङ्करजीने कृपा करके ही ब्राह्मणीको भेजा था।

किसानका अद्भुत त्याग

जापानमें एक बार भयानक अकाल पड़ा। एक गाँवमें एक गरीब किसानके पास एक बोरा धान था। समूचे गाँवमें और किसीके पास भी इतना धान नहीं था। वह चाहता तो बोरेके धानसे बहुत दिनोंतक अपना जीवन-निर्वाह कर सकता था; परंतु उसने सोचा कि 'मैं यदि इस धानको खा गया तो अगली फसलके बीजके लिये गाँवमें धान किसीको नहीं मिलेगा।' इसलिये उसने घरमें धान होनेपर भी अनशन करके प्राण दे देनेका निश्चय किया। एक दिन लोगोंने देखा—धानके बंद बोरेपर सिर टिकाये उसकी लाश पड़ी है। तब लोगोंको उसके त्यागका पता लगा।

विषयोंमें दुर्गन्ध

कोई भक्त राजा एक महात्माकी पर्णकुटीपर जाया करते थे। उन्होंने एक बार महात्माको अपने महलोंमे पधारनेके लिये कहा, पर महात्माने यह कहकर टाल दिया कि मुझे तुम्हारे महलमें बड़ी दुर्गन्ध आती है, इसलिये मैं नहीं जाता।' राजाको बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने मन-ही-मन सोचा—'महलमें तो इत्र-फुलेल छिड़का रहता है, वहाँ दुर्गन्धका क्या काम। महात्माजी कैसे कहते हैं पता नहीं।' राजाने संकोचसे फिर कुछ नहीं कहा। एक दिन महात्माजी राजाको साथ लेकर घूमने निकले। घूमते-घामते चमारोंकी बस्तीमें

पहुँच गये और वहाँ एक पीपलकी छायामें खड़े हो गये। चमारोंके घरोंमें कहीं चमड़ा कमाया जा रहा था, कहीं सूख रहा था तो कहीं ताजा चमड़ा तैयार किया जा रहा था। हर घरमें चमड़ा था और उसमेंसे बड़ी दुर्गन्ध आ रही थी। हवा भी इधरकी ही थी। दुर्गन्धके मारे राजाकी नाक फटने लगी। उन्होंने महात्मासे कहा—'भगवन्! दुर्गन्धके मारे खड़ा नहीं रहा जाता—जल्दी चलिये।' महात्माजी बोले—तुम्हींको दुर्गन्ध आती है, देखो चमारोंके घरोंकी ओर—कितने पुरुष, स्त्रियाँ और बाल-बच्चे हैं। कोई काम कर रहे हैं, कोई खा-पी रहे हैं, सब हँस-खेल रहे हैं। किसीको तो दुर्गन्ध नहीं आती, फिर तुम्हींको क्यों आने लगी?' राजाने कहा—'भगवन्! चमड़ा कमाते-कमाते तथा चमड़ेमें रहते-रहते इनका अभ्यास हो गया है। इनकी नाक ही ऐसी हो गयी है कि इन्हें चमड़ेकी दुर्गन्ध नहीं आती। पर मैं तो इसका अभ्यासी नहीं हूँ। जल्दी चलिये—अब तो एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहरा जाता।' महात्माने हँसकर कहा—'भाई! यही हाल तुम्हारे राजमहलका भी है। विषय-भोगोंमें रहते-रहते तुम्हें उनमें दुर्गन्ध नहीं आती—तुम्हारा अभ्यास हो गया है। पर मुझको तो विषय देखते ही उल्टी-सी आती है। इसीसे मैं तुम्हारे घर नहीं जाता था।'

राजाने रहस्य समझ लिया। महात्मा हँसकर राजाको साथ लिये वहाँसे चल दिये।

सच्चा साधु

तपस्वी जुन्नून एक पहाड़पर गये, वहाँ देखा, एक झोपड़ीके दरवाजेमें एक आदमी बैठा है। उसका एक पैर झोपड़ीके अंदर है और दूसरा कटा हुआ बाहर पड़ा है। और उसपर लाखों चींटियाँ लगी हैं। जुन्नूनने उसके पास जाकर प्रणाम किया और उससे इसका कारण पूछा।

उसने कहा—एक दिन मैं झोपड़ीमें बैठा था, उधरसे एक नवयुवती स्त्री निकली। उसे देखकर मेरा मन चञ्चल हो गया और मैं उसे अच्छी तरह देखनेके लिये खड़ा हुआ। ज्यों ही मैंने अपना एक पैर झोपड़ीके बाहर रक्खा, त्यों ही आकाशवाणी सुनायी दी–'अरे साधु! तुझे जरा भी शर्म नहीं आती। तू तीस सालसे एकान्तमें भजन कर रहा है और भक्तके नामसे विख्यात है। इतनेपर भी आज तू शैतानके फंदेमें फँसने जा रहा है?'

यह सुनते ही मेरा शरीर काँप उठा। जो पग झोपड़ीके बाहर निकला था, उसको मैंने तुरंत काटकर फेंक दिया, तबसे यहीं बैठा हूँ और प्रभुकी लीला देखता हूँ।'

यह साधु सच्चा भजनानन्दी था।

पारमार्थिक प्रेम बेचनेकी वस्तु नहीं

एक गृहस्थ त्यागी, महात्मा थे। एक बार एक सज्जन दो हजार सोनेकी मोहरे लेकर उनके पास आये और कहने लगे—'मेरे पिताजी आपके मित्र थे, उन्होंने धर्मपूर्वक अर्थोपार्जन किया था। मैं उसीमेंसे कुछ मोहरोंकी थैली लेकर आपकी सेवामे आया हूँ, इन्हे स्वीकार कर लीजिये।' इतना कहकर वे थैली छोड़कर चले गये। महात्मा उस समय मौन थे, कुछ बोले नहीं। पीछेसे महात्माने अपने पुत्रको बुलाकर कहा—'बेटा! मोहरोंकी थैली अमुक सज्जनको वापस दे आओ।' उनसे कहना—'तुम्हारे पिताके साथ मेरा पारमार्थिक—ईश्वरको लेकर प्रेमका सम्बन्ध था, सांसारिक विषयको लेकर नहीं।' पुत्रने कहा—'पिताजी! आपका हृदय क्या पत्थरका बना है? आप जानते हैं, अपना कुटुम्ब बड़ा है और घरमे कोई धन गड़ा नहीं है। बिना माँगे इस भले आदमीने मोहरे दी हैं तो इन्हे अपने कुटुम्बियोंपर दया करके ही आपको स्वीकार कर लेना चाहिये।'

महात्मा बोले—'बेटा! क्या तेरी ऐसी इच्छा है कि मेरे कुटुम्बके लोग धन लेकर मौज करें और मैं अपने ईश्वरीय प्रेमको बेचकर बदलेमे सोनेकी मोहरें खरीदकर दयालु ईश्वरका अपराध करूँ?'

स्वावलम्बी विद्यार्थी

ग्रीसमें किलेन्यिस नामक एक युवक एथेंसके तत्त्ववेत्ता जीनोकी पाठशालामें पढ़ता था। किलेन्यिस बहुत ही गरीब था। उसके बदनपर पूरा कपड़ा नहीं था। पर पाठशालामें प्रतिदिन जो फीस देनी पड़ती थी, उसे किलेन्थिस रोज नियमसे दे देता था। पढ़नेमें वह इतना तेज था कि दूसरे सब विद्यार्थी उससे ईर्षा करते। कुछ लोगोंने यह संदेह किया कि 'किलेन्थिस जो दैनिक फीसके पैसे देता है, सो जरूर कहींसे चुराकर लाता होगा; क्योंकि उसके पास तो फटे चिथड़ेके सिवा और कुछ है ही नहीं।' और उन्होंने आखिर उसे चोर बताकर पकड़वा दिया। मामला अदालतमे गया।

किलेन्थिसने निर्भयताके साथ हाकिमसे कहा कि 'मैं बिल्कुल निर्दोष हूँ, मुझपर चोरीका दोष सर्वथा मिथ्या लगाया गया है। मैं अपने इस बयानके समर्थनमें दो गवाहियाँ पेश करना चाहता हूँ।'

गवाह बुलाये गये। पहला गवाह था एक माली। उसने कहा कि 'यह युवक प्रतिदिन मेरे बगीचेमें आकर कुएँसे पानी खींचता है और इसके लिये इसे कुछ पैसे मजदूरीके दिये जाते हैं।' दूसरी गवाहीमें एक बुढ़िया माईने कहा कि—'मैं बूढ़ी हूँ। मेरे घरमें कोई पीसनेवाला नहीं है। यह युवक प्रतिदिन मेरे घरपर आटा पीस जाता है और बदलेमे अपनी मजदूरीके पैसे ले जाता है।'

इस प्रकार शारीरिक परिश्रम करके किलेन्थिस कुछ आने प्रतिदिन कमाता और उसीसे अपना निर्वाह करता तथा पाठशालाकी फीस भी भरता। किलेन्थिसकी इस नेक कमाईकी बात सुनकर हाकिम बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे इतनी सहायता देनी चाही कि जिससे उसको पढ़नेके लिये मजदूरी करनी न पड़े; परंतु उसने सहायता लेना स्वीकार नहीं किया और कहा कि 'मैं स्वयं परिश्रम करके ही पढ़ना चाहता हूँ। किन्हींसे दान लेनेकी मुझे आवश्यकता नहीं है।'

उसके गुरु जीनो महाशयने भी उस स्वावलम्बी युवककी बातका समर्थन किया और उसके सहायता न लेनेपर प्रसन्नता प्रकट की।

सहायता लेनेमें संकोच

एक घुड़सवार कहीं जा रहा था। उसके हाथसे चाबुक गिर पड़ा। उसके साथ उस समय बहुत-से मुसाफिर पैदल चल रहे थे; परंतु उसने किसीसे चाबुक उठाकर दे देनेके लिये नहीं कहा। खुद घोड़ेसे उतरा और चाबुक उठाकर फिर सवार हो गया। यह देखकर साथ चलनेवाले मुसाफिरोंने कहा—'भाई साहेब! आपने इतनी तकलीफ क्यों की? चाबुक हमीं लोग उठाकर दे देते, इतने-से कामके लिये आप क्यों उतरे?' घुड़सवारने कहा। 'भाइयो! आपका कहना तो बहुत ही सज्जनताका है, परंतु मैं आपसे ऐसी मदद क्योंकर ले सकता हूँ! प्रभुकी यही आज्ञा है कि जिससे उपकार प्राप्त हो, बदलेमें जहाँतक हो सके, उसका उपकार करना

चाहिये । उपकारके बदलेमें प्रत्युपकार करनेकी स्थिति हो तभी उपकारका भार सिर उठाना चाहिये । मैं आपको पहचानता नहीं, न तो आप ही मुझको जानते हैं । राहमे अचानक हमलोगोंका साथ हो गया है, फिर कब मिलना होगा, इसका कुछ भी पता नहीं है । ऐसी हालतमें मैं उपकारका भार कैसे उठाऊँ ?'

यह सुनकर मुसाफिरोंने कहा—'अरे भाई साहेब ! इसमें उपकार क्या है ? आप-जैसे भले आदमीके हाथसे चाबुक गिर पड़ा, उसे उठाकर हमने दे दिया । हमे इसमें मेहनत ही क्या हुई ?'

घुड़सवारने कहा—'चाहे छोटी-सी बात या छोटा-सा ही काम क्यों न हो, मैं लेता तो आपकी मदद ही न ? छोटे-छोटे कामोंमें मदद लेते-लेते ही बड़े कामोंमे भी मदद लेनेकी आदत पड़ जाती है और आगे चलकर मनुष्य अपने स्वावलम्बी स्वभावको खोकर पराधीन बन जाता है । आत्मामे एक तरहकी सुस्ती आ जाती है और फिर छोटी-छोटी बातोंमें दूसरोंका मुँह ताकनेकी बान पड़ जाती है । यही मनमे रहता है, मेरा यह काम कोई दूसरा कर दे, मुझे हाथ-पैर कुछ भी न हिलाने पड़ें । इसलिये जबतक कोई विपत्ति न आवे या आत्माकी उन्नतिके लिये आवश्यक न हो तबतक केवल आरामके लिये किसीसे किसी तरहकी भी मदद नहीं लेनी चाहिये । जिनको मददकी जरूरत न हो, वे जब मदद लेने लगते हैं तो जिनको जरूरत होती है, उन्हें मदद मिलनी मुश्किल हो जाती है ।'

आदर्श दण्ड

फ्रेडरिककी सेनामें एक मनुष्य कभी लेफ्टेनेंट कर्नलके पदपर रहा था। काम न होनेसे उसे अलग कर दिया गया। वह बार-बार फ्रेडरिकके पास आता और उसी पदके लिये उसपर दबाव डालता। फ्रेडरिकने बार-बार उसे समझाया—'भैया! अभी कोई जगह खाली नहीं है।' परंतु उसने एक भी नहीं सुनी। आखिर फ्रेडरिकने हैरान होकर उसे बड़ी कड़ाईके साथ वहाँ आनेके लिये मने कर दिया। कुछ समय बाद किसीने फ्रेडरिकके सम्बन्धमें एक बड़ी कड़ी कविता लिखी। शान्तस्वभाव होनेपर भी फ्रेडरिक इस अपमानको न सह सका। उसने मुनादी करवा दी कि इस कविताके लेखकको पकड़कर जो मेरे सामने हाजिर करेगा उसे पचास सोनेकी मोहरें इनाम दी जायँगी। दूसरे दिन फ्रेडरिकने देखा वही आदमी सामने हाजिर है। फ्रेडरिकने क्रोध और आश्चर्यमें भरकर पूछा, 'तू फिर यहाँ कैसे फूट निकला?' उसने कहा—'सरकार! आपके विरुद्ध जो कड़ी कविता लिखी गयी थी, उसके लेखकको पकड़ा देनेवालेको आपने पचास सोनेकी मोहरें देनेकी मुनादी करवायी है न?'

'हाँ हाँ, तो इससे क्या?' फ्रेडरिकने शान्तभावसे पूछा।

'तब तो सरकार! वह इनाम मुझे दिये बिना आपका छुटकारा नहीं।' उसने कहा।

'क्यों?' फ्रेडरिकने सकोचसे पूछा।

'इसलिये सरकार! कि उस कविताका लिखनेवाला यही आपका सेवक है। आप सरकार! मुझे भले ही दण्ड दें, परंतु क्या मेरे भूखों मरते हुए स्त्री-बच्चोंको अपनी घोषणाके अनुसार इनाम नहीं देंगे मेरे कृपालु स्वामी!'

फ्रेडरिक एकदम लालपीला हो उठा। तुरंत ही एक कागजके टुकड़ेपर कुछ लिखकर उसे देते हुए फ्रेडरिकने कहा—'ले इस परवानेको लेकर स्पाण्डो किलेके कमाण्डरके पास चला जा। वहाँ दूसरोंके साथ कैद करनेका मैंने तुझको दण्ड दिया है।'

'जैसी मर्जी सरकारकी! परंतु उस इनामको न भूलियेगा।'

'अच्छा सुन! कमाण्डरको परवाना देकर उससे ताकीद कर देना कि भोजन करनेसे पहले परवाना पढ़े नहीं। यह मेरी आज्ञा है।' गरीब बेचारा क्या करता, फ्रेडरिककी आज्ञाके अनुसार उसने स्पाण्डोके किलेपर जाकर परवाना वहाँके कमाण्डरको दिया और कह दिया कि भोजनके बाद परवाना पढ़नेकी आज्ञा है।

दोनों खानेको बैठे। वह बेचारा क्या खाता। उसका तो कलेजा काँप रहा था कि जाने परवानेमे क्या लिखा है! किसी तरह भोजन समाप्त हुआ, तब कमाण्डरने परवाना पढ़ा और पढ़ते ही वह प्रसन्न होकर पत्रवाहकको बधाइयों-पर-बधाइयाँ देने लगा। उसमे लिखा था—

'इस पत्रवाहक पुरुषको आजसे मैं स्पाण्डोके किलेका कमाण्डर नियुक्त करता हूँ अतएव इसको सब काम सम्हलाकर और सारे अधिकार सौंपकर तुम पोटर्सडमके किलेपर चले जाओ। तुम्हें वहाँका कमाण्डर बनाया जाता है, इससे तुमको भी विशेष लाभ होगा। उसी बीचमे इस नये कमाण्डरके बाल-बच्चे भी सोनेकी पचास मोहरें लेकर पहुँच रहे हैं।'

पत्रवाहक परवाना सुनकर आनन्दसे उछल उठा और पुराने कमाण्डरको भी अपनी इस तबदीलीसे बड़ी खुशी हुई!

नाग महाशयकी साधुता

परमहंस रामकृष्णदेवके भक्त शिष्य डा० दुर्गाचरण नाग आदर्श पुरुष थे। एक समय वे अपने देशमें थे। पुआलसे छाये हुए घरकी छान टूट गयी थी। उससे जल गिरता था। नागजीकी माताने छान ठीक करानेके लिये घरई (छानेवाले) को बुलाया। घरईके घरमें आते ही नाग महाशय चिन्तामें पड गये। उन्होंने उसे आदरपूर्वक बैठाया, चिलम सजा दी। कुछ देर बाद जब वह छान-पर चढ़कर काम करने लगा, तब तो नाग महाशय हाथ जोड़कर उससे नीचे उतर आनेके लिये विनय करने लगे। जब वह नहीं उतरा, तब सिर पीट-पीटकर कहने लगे 'हाय परमहंसदेव! तुमने क्यों मुझको गृहस्थाश्रममे रहनेके लिये आदेश दिया; मेरे सुखके लिये दूसरोंको कष्ट हो रहा है।' नाग महाशयकी व्याकुलता देखकर घरई नीचे उतर आया। नाग महाशयने उसके लिये फिर चिलम सजा दी और खड़े होकर उसे हवा करने लगे। थकावट दूर होनेपर उसको दिनभरका मेहनताना देकर विदा किया।

मालिकका नौकरके प्रति सद्भाव

हुगलीके सरकारी वकील श्रीशशिभूषण वन्द्योपाध्याय एक दिन जेठकी जलती दुपहरीमें किरायेकी गाड़ी करके चुँचड़ामें अपने समधीके घर पहुँचे। वे जिस कामसे गये थे, वह कोई ऐसा काम नहीं था कि उन्हें स्वयं जाना पड़े। वे किसी भी नौकरको पत्र देकर भेज सकते थे। समधीके घरपर किसीने उनसे पूछा कि 'इतने-से कामके लिये इस घाममें आप क्यों आये ?' उन्होंने कहा 'पहले तो ऐसा ही विचार था कि किसी नौकरको भेज दूँ, पर जब देखा कि बड़े कड़ाकेकी धूप है, तब किसी नौकरको पैदल भेजते मेरा मन नहीं माना और मैं स्वयं गाड़ी करके चला आया।' शशिभूषण बाबूकी बात सुनकर सब लोग दंग रह गये और उनकी बड़ाई करने लगे। शशिभूषणने कहा—'इसमें बड़ाईकी क्या बात है। मेरा मन नहीं माना, इसलिये मैं चला आया।'

पितरोंका आगमन

संत एकनाथजीके पिताका श्राद्ध था। घरमें श्राद्धकी रसोई बन रही थी। हलवा पकने लगता है तब उसकी सुन्दर सुगन्ध दूरतक फैल जाती है। अतएव इनके भी घरके बाहरतक सुगन्ध छा रही थी। इसी समय कुछ महार सपरिवार उधरसे जा रहे थे। सुगन्ध उनकी नाकोंमें भी गयी। महारके एक बच्चेने कहा—'माँ! कैसी मीठी महक है। कैसे बढ़िया पकान्न बने होंगे।' माँने उदास होकर कहा—'बेटा! हमलोगोंके नसीबमें ये चीजें कहाँ रक्खी हैं। हम अभागोंको तो इनकी गन्ध भी दुर्लभ है।' संत एकनाथजीने उनकी यह बात सुन ली। उनका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने सोचा—'सब शरीर भगवान्‌के ही तो मन्दिर हैं—इन महारोंके द्वारा भी तो भगवान् ही भोग लगायेंगे।' उन्होंने तुरंत महारोंको बुलाया और अपनी पत्नी गिरिजाबाईसे कहा कि 'यह रसोई इनको दे दो।' गिरिजाबाईका भाव और भी सुन्दर था, उन्होंने कहा—'अन्न तो बहुत है, इनको सब बाल-बच्चों और स्त्रियों-सहित बुलवा लीजिये, सबको अच्छी तरह परोसकर जिमाया जाय। भगवान् सर्वत्र हैं, सब प्राणियोंमे हैं, आज भगवान्‌ने ही इनके द्वारा यह अन्न चाहा है, अतएव आज इन्हींको तृप्त करके भगवान्‌की सेवा करनी चाहिये।' सबको बुलाया गया, रास्तेपर पत्तलें रक्खी गयीं और बड़े आदर-सत्कारके साथ सब पकान्न बाहर लाकर उनको भोजन कराया गया। जिसकी गन्ध भी कभी नसीब नहीं होती, उन चीजोंको भरपेट खाकर महार और उसके स्त्री-बच्चोंको कितना आनन्द हुआ, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इस भोजनसे तो उनको अपरिमित प्रसन्नता हुई ही, इससे भी अधिक सुख मिला उनको संत एकनाथ और साध्वी गिरिजाबाईके

प्रेमपूर्ण नम्र व्यवहारसे। उनके अङ्ग-अङ्ग एकनाथजीको मूक आशीर्वाद देने लगे! गिरिजाबाईने पान-सुपारी देकर उन्हें विदा किया। तदनन्तर वर्णाश्रमधर्मको माननेवाले एकनाथ और गिरिजाबाईने घर-आँगन धोया, बर्तन मले, नया शुद्ध जल मँगवाया और फिरसे श्राद्धकी रसोई बनवायी। परंतु जब निमन्त्रित ब्राह्मणोंने सब हाल सुना तो उन्होंने भोजन करनेसे इन्कार कर दिया। एकनाथजीने हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की—'पूजनीय ब्राह्मणगण! पहली रसोई बनी तो थी आप लोगोंके लिये ही, परंतु जब उसकी गन्ध अन्त्यज-परिवारके नाकोंमें पहुँच गयी, तब वह उच्छिष्ट अन्न आपको कैसे परोसा जाता। वह अन्न उन लोगोंको खिला दिया गया और फिरसे सारी सामग्री इकट्ठी करके आपके लिये नयी रसोई बनायी गयी। आप हमें क्षमा करके इसे ग्रहण कीजिये!' बहुत अनुनय-विनय की, परंतु ब्राह्मणोंको उनकी बात नहीं जँची। एकनाथजीको चिन्ता हुई। उनके यहाँ श्रीखंडिया तो रहता ही था। श्रीखंडियाने उनसे कहा—'नाथजी! आपने रसोई पितरोंके लिये बनायी है न? फिर चिन्ता क्यों करते हैं? पत्तलें परोसकर पितरोंको बुलाइये। वे स्वयं आकर भोजन क्यों नहीं करेंगे?' एकनाथजीने ऐसा ही किया। पत्तलें लगा दी गयीं और 'आगतम्' कहते ही सूर्यनारायण, चक्रपाणि और भानुदास तीनों पितर आकर अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये। एकनाथजीने बड़े भक्तिभावसे उनका पूजन किया और भोजन परोसकर उन्हे जिमाया। तीनों पितर तृप्त होकर आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गये। जब ब्राह्मणोंको यह सब हाल मालूम हुआ, तब उन्होंने एकनाथजीका महत्त्व समझा और अपनी करनीपर पश्चात्ताप किया!

शिवाजीको पत्र

संत तुकारामजी लोहगाँवमें थे। छत्रपति शिवाजीने अपने खास आदमियोंके साथ बहुत-सी मशालें, घोड़े तथा बहुमूल्य जवाहिरात भेजे और उनसे पूना पधारनेके लिये प्रार्थना की। विरक्त-हृदय तुकारामजीने उनकी भेजी हुई चीजोंको छुआतक नहीं। उन्होंने सब चीजें लौटा दीं और नौ अभंगोंमें उनको नीचे लिखा पत्र लिख भेजा—

'मशाल, छत्र और घोड़ोंको लेकर मैं क्या करूँ। यह सब मेरे लिये शुभ नहीं है। हे पण्ढरीनाथ! अब मुझे इस प्रपञ्चमें क्यों डालते हो। मान और दम्भका कोई भी काम मेरे लिये शूकरी-विष्ठा ही है। आप दौड़कर आइये और इससे मुझे बचाइये।'

'मेरा चित्त जिसको नहीं चाहता, वही तुम मुझको दिया करते हो, क्यों मुझे इतना तंग कर रहे हो ?'

'मैं संसारसे अलग रहना चाहता हूँ, विषयका सङ्ग चाहता ही नहीं। मैं चाहता हूँ—एकान्तमे रहूँ और किसीसे कुछ भी न बोलूँ। मन चाहता है कि सब विषयोंको वमनके समान त्याज्य समझूँ। मैं तो यह चाहता हूँ, परन्तु हे नाथ! करने-धरनेवाले तो तुम्हीं हो।'

'मैं क्या चाहता हूँ सब तुम्हें पता है। परंतु जानकर भी तुम टाल देते हो। यह तो तुम्हें आदत ही पड़ गयी है कि जो भी तुम्हें चाहता है, तुम उसके सामने ऐसी-ऐसी चीजें लाकर रखते हो कि जिससे वह उनमें फँसकर तुम्हें भूल जाय। परंतु नाथ! तुकाने तो तुम्हारे चरणोंको जोरसे पकड़ लिया है। देखूँ तो सही, तुम इन्हें कैसे छुड़ाते हो।'

[भगवान्‌से इतना कहकर अब तुकारामजी छत्रपति शिवाजीसे कहते हैं—]

'चींटी और सम्राट् दोनों ही मेरे लिये एक-से हैं। मोह और आशा तो कलिकालकी फाँसियाँ है। मैं इनसे छूट गया हूँ। मेरे लिये अब सोना और मिट्टी दोनों बराबर हैं। सारा वैकुण्ठ घर बैठे ही मेरे यहाँ आ गया है। मुझे किस बातकी कमी है ?'

'मैं तो तीनों लोकोंके सारे वैभवका धनी बन गया हूँ। सबके स्वामी भगवान् मेरे माता-पिता मुझको मिल गये हैं, अब मुझे और क्या चाहिये ? त्रिभुवनका सारा बल तो मेरे ही अंदर आ गया। अब तो सारी सत्ता मेरी ही है।'

'फिर, आप मुझे दे ही क्या सकते हैं ? मैं तो विट्ठलको चाहता

हूँ। हाँ, आप उदार हैं, चकमक पत्थर देकर पारस लेना चाहते हैं; प्राण भी दें, तो भी भगवान्की एक बातकी भी बराबरी नहीं हो सकेगी। धन क्या देते हैं? धन तो तुकाके लिये गोमांसके समान है। (यदि कुछ देना ही चाहते हैं तो बस यह दीजिये—) मैं इसीसे सुखी होऊँगा। मुखसे 'विट्ठल' 'विट्ठल' कहिये। गलेमें तुलसीकी कण्ठी पहनिये। एकादशीका व्रत कीजिये और हरिके दास कहलाइये। बस, तुकाकी आपसे यही आशा है।'

'बड़े-बड़े पर्वत सोनेके बनाये जा सकते हैं, वनके तमाम पेड़ोंको कल्पतरु बनाया जा सकता है। नदियों और समुद्रोंको अमृतसे भरा जा सकता है, मृत्युको रोका जा सकता है, सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। यह सब हो सकता है, परंतु प्रभुके चरणोंका प्रेम प्राप्त करना परम दुर्लभ है। इन सब सिद्धियोंसे भगवच्चरणोंका लाभ नहीं होता। श्रीविट्ठलके ऐसे परम दुर्लभ, परम पावन, परमानन्द देनेवाले श्रीचरण बड़े भाग्यसे मुझको मिल गये हैं, इनके सामने अब मैं इन मशालों, छत्रों और घोड़ोंको अपने हृदयमें कहाँ जगह दूँ?'

'आपने बड़े-बड़े बलवानोंको अपना मित्र बनाया है, परंतु याद रखिये—अन्त समय ये कोई भी काम नहीं आयेंगे। पहले राम-नाम लीजिये; इस उत्तम 'राम' को अपने अंदर भर लीजिये। ये परिवार, लोक, धन, सैन्य किसी काम नहीं आयेंगे। जबतक काल सिरपर सवार नहीं होता, तभीतक आपका यह बल है। तुका कहता है—'प्यारे! लख चौरासीके चक्करसे बचिये।'

मनका पाप

एक संत थे। विचित्र जीवन था उनका। वे हरेकसे अपनेको अधम समझते और हरेकको अपनेसे उत्तम। घूमते-फिरते एक दिन वे नदीके तीरपर जा पहुँचे। सुनसान एकान्त स्थान था; परम रमणीय। उन्होंने दूरसे देखा—नदीके तटपर स्वच्छ सुकोमल बालू-पर एक प्रौढ़ उम्रका मनुष्य बैठा है, बहुत उल्लासमें है वह। पास ही पंद्रह-सोलह सालकी एक सुन्दरी युवती बैठी है। उसके हाथमें काँचका एक गिलास है। गिलासमें जल-जैसा कोई द्रव पदार्थ है। दोनों हँस-हँसकर बातें कर रहे हैं—बेधड़क। इस दृश्यको देखकर संत मन-ही-मन सोचने लगे—'इस प्रकार निर्जन स्थानमे परस्पर हँसी-मजाक करनेवाले ये स्त्री-पुरुष जरूर कोई पाप-चर्चा ही करते होंगे और गिलासमें जरूर शराब होगी। व्यभिचार और शराबका तो चोलीदामनका सम्बन्ध है। तो क्या मैं इनसे भी अधम हूँ? मैं तो कभी किसी स्त्रीसे एकान्तमे मिलतातक नहीं। न मैंने कभी शराब ही पीयी है।'

संत इस तरह विचार कर ही रहे थे कि उन्हें नदीकी भीषण तरंगोंके थपेड़ोंसे घायल एक छोटी-सी नाव डूबती दिखलायी दी।

नाव उलट चुकी थी । यात्री पानीमें इधर-उधर हाथ मार रहे थे, सबकी जान खतरेमें थी । संत हाय ! हाय ! पुकार उठे । इसी बीचमें बिजलीकी तरह वह मनुष्य दौड़कर नदीमें कूद पड़ा और बड़ी बहादुरीके साथ बात-की-बातमें नौ मनुष्योंको बचाकर निकाल लाया ! इतनेमें संत भी उसके पास जा पहुँचे । इस तरह—अपने प्राणोंकी परवा न कर दूसरोंके प्राण बचानेके लिये मौतके मुँहमें कूद पड़ना और सफलताके साथ बाहर निकल आना—देखकर संत-का मन बहुत कुछ बदल गया था । वे दुविधामें पड़े उसके मुखकी ओर चकित-से होकर ताक रहे थे । उसने मुसकराकर कहा—'महात्माजी ! भगवान्‌ने इस नाचीजको निमित्त बनाकर नौ प्राणियों-को तो बचा लिया है, एक अभी रह गया है, उसे आप बचाइये !' संत तैरना नहीं जानते थे, उनकी कूदनेकी हिम्मत नहीं हुई । कोई जवाब भी नहीं बन आया । तब उसने कहा—'महात्माजी ! अपने-को नीचा और दूसरोंको ऊँचा माननेका आपका भाव तो बहुत ही सुन्दर है, परंतु असलमें अभीतक दूसरोंको ऊँचा देखनेका यथार्थ भाव आपमें पैदा नहीं हो पाया है । नीचा देखकर ऊँचा मानना—अपनेमें यह अभिमान उत्पन्न करता है कि मैं अपनेसे नीचोंको भी ऊँचा मानता हूँ । जिस दिन आप दूसरोंको वस्तुतः ऊँचा देख पायेंगे, उसी दिन आप यथार्थमें ऊँचा मान भी सकेंगे । भगवान् यदि मूर्खके रूपमें आपके सामने आवें और आप उन्हें पहचान ले तो फिर मूर्खका-सा बर्ताव देखकर भी क्या आप उनको मूर्ख ही मानेंगे ? जो साधक सबमें श्रीभगवान्‌को पहचानता है, वह किसीको

अपनेसे नीचा नहीं मान सकता । दूसरी एक बात यह है कि अभीतक आपके मनसे पूर्वके अनुभव किये हुए पाप-संस्कारोंका पूर्णतया नाश नहीं हुआ है । अपने ही मनके दोष दूसरोंपर आरोपित होते हैं । व्यभिचारीको सारा जगत् व्यभिचारी और चोरको सब चोर दीखते हैं । आपने अपनी भावनासे ही हमलोगोंपर दोषकी कल्पना कर ली । देखिये—यह जो लड़की बैठी है—मेरी बेटी है । इसके हाथमें जो गिलास है, वह इसी नदीके निर्मल जलसे भरा है । यह बहुत दिनों बाद आज ही ससुरालसे लौटकर आयी है । इसका मन देखकर हमलोग नदी-किनारे आ गये थे । बहुत दिनों बाद मिलनेके कारण दोनोंके मनमे बड़ा आनन्द था, इसीसे हमलोग हँसते हुए बातें कर रहे थे । फिर बाप-बेटीमें संकोच भी कैसा ? असलमें मैं तो भगवान्की प्रेरणासे आपके भावकी परीक्षाके लिये ही यहाँ आया था ।'

उसकी ये बातें सुनकर संतका बचा-खुचा अभिमान और पापके सारे संस्कार नष्ट हो गये । संतने समझा—'मेरे प्रभुने ही दया करके इनके द्वारा मुझको यह उपदेश दिलवाया है ।' संत उसके चरणोंपर गिर पड़े । इतनेमें वह डुबा हुआ एक आदमी भी भगवान्-की कृपा-शक्तिसे नदीमेंसे निकल आया ।

तबसे संतको किसीमे भी दोष नहीं दीखते थे । वे किसीको भी अपनेसे नीचा नहीं मानते और किसीसे भी अपनेको ऊँचा नहीं देखते थे ।

गरीब चोरसे सहानुभूति

एक भक्त थे, कोई उनका कपड़ा चुरा ले गया। कुछ दिनों बाद उन्होंने उसको बाजारमें बेचते देखा। दूकानदार कह रहा था कि 'कपड़ा तुम्हारा है या चोरीका, इसका क्या पता। हाँ, कोई सज्जन पहचानकर बता दे कि तुम्हारा ही है तो मैं खरीद लूँगा।' भक्त पास ही खडे थे और उनसे दूकानदारका परिचय भी था। उन्होंने कहा—'मै जानता हूँ, तुम दाम दे दो।' दूकानदारने कपड़ा खरीदकर कीमत चुका दी। इसपर भक्तके एक साथीने उनसे पूछा कि 'आपने ऐसा क्यों किया ?' इसपर भक्त बोले कि 'वह बेचारा बहुत गरीब है, गरीबीसे तग आकर उसे ऐसा करना पड़ा है। गरीबको तो हर तरहसे सहायता ही करनी चाहिये। इस अवस्थामे उसको चोर बतलाकर फँसाना और भी पाप है।' इस बातका चोरपर बड़ा प्रभाव पड़ा और वह भक्तकी कुटियापर जाकर रोने लगा। उस दिनसे वह भी भक्त बन गया।

आदर्श मित्रता

डामन और पिथियस दो मित्र थे। दोनोंमें बड़ा ही प्रेम था। एक बार उस देशके अत्याचारी राजाने डामनको फाँसीका हुक्म दे दिया। डामनके स्त्री-बच्चे बहुत दूर समुद्रसे उस पार रहते थे। उसने उनसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की। राजाने कहलवाया कि डामनके बदलेमें यदि कोई दूसरा आदमी जेलमें रहनेको तैयार हो और यदि डामन समयपर न पहुँच सके तो उसीको फाँसीपर चढ़ा दिया जाय, यह उसे मंजूर हो तो डामन नियत समयके लिये घर जा सकता है। पिथियसने डामनसे बिना ही पूछे यह शर्त स्वीकार कर ली। पक्की लिखा-पढ़ी हो गयी और डामनको जेलखानेसे निकालकर उसकी जगह पिथियसको रख दिया गया। पिथियस सोच रहा था, 'हे भगवन्! डामन समयपर न लौटे तो बड़ा अच्छा हो।' समय बीतने लगा। हवा विरुद्ध होनेके कारण डामनकी नाव समयपर नहीं पहुँच सकी। फाँसीका समय समीप आ गया। पिथियसके मनमें आनन्द और शोक दोनोंकी लहरें उठ बैठ रही थीं। जब वह सोचता कि 'डामन नहीं आया, मुझे फाँसी हो जायगी' तब वह आनन्दमें मस्त हो जाता। दूसरे ही क्षण जब यह विचार आता तो वह शोकमग्न हो जाता कि 'अभी मुझे फाँसी हुई तो नहीं, इसी बीचमें यदि वह आ पहुँचा तो मेरा मनोरथ असफल ही रह जायगा।' वह बड़े ही व्यग्रचित्तसे बार-बार भगवान्‌से प्रार्थना

करता—'प्रभो ! डामनके आनेमें देर हो जाय और मैं फाँसीपर चढ़ा दिया जाऊँ ।' उधर डामन नावमें यह सोचकर अधीर हो रहा था कि 'कहीं मैं न पहुँच सका तो मेरे पिथियसकी फाँसी हो जायगी ।' समय हो गया । डामन नहीं पहुँचा । पिथियसको फाँसीके मचानपर चढ़ाया गया । उसे बड़ा हर्ष था । लोगोंने कहा—'डामनने बहुत बुरा किया, समयपर नहीं आया ।' इस बातको पिथियस नहीं सह सका । उसने कहा, 'कई दिनोंसे हवा विपरीत चल रही है, इसीसे वह नहीं आ सका । इसपर किसीको कोई बुरा भाव नहीं करना चाहिये ।' इतना कहकर वह उल्लाससे बोला—'भाई ! समय हो गया है, अब तुम देर क्यों कर रहे हो ?' उसे एक-एक क्षण असह्य हो रहा था । जल्लाद तैयार हुआ । इसी बीचमें दूरसे बड़े जोरकी आवाज सुनायी दी—ठहरो-ठहरो, मैं आ पहुँचा ।' लोगोंके देखते-ही-देखते डामन पागल-सा हुआ, घोड़ा भगाता हुआ आया और जीनसे कूदकर फाँसीके मचानपर जा चढ़ा । पिथियसको गले लगाकर बोला—'भगवान्‌को धन्य, जो उन्होंने तुम्हारी प्राण-रक्षा की ।' पिथियसने हाथ मलते हुए कहा—'भगवान्‌ने मेरी प्रार्थना नहीं सुनी । तुम दो मिनट बाद क्यों न पहुँचे ।' इस अद्भुत दृश्यको देखकर कठोर हृदयका राजा भी आश्चर्यमें डूब गया । उसपर बड़ा ही प्रभाव पड़ा और वह उनके समीप आकर गद्‌गद वाणीसे बोला—'दोनों मचानसे उतर जाओ । मैं ऐसी बेजोड़ जोड़ीको तोड़ना नहीं चाहता । मेरी तो प्रार्थना है—दोके साथ तीसरा मै भी ऐसा ही बन जाऊँ ।'

दो मित्रोंका आदर्श प्रेम

एक देशमें दो आदमी दुर्भाग्यसे गुलाम बन गये थे। एकका नाम एन्टोनिओ था और दूसरेका नाम रोजर। दोनों एक ही जगह काम करते, खाते-पीते तथा उठते-बैठते थे। धीरे-धीरे उनमें परस्पर घना प्रेम हो गया। छुट्टीके समय दुःख-सुखकी बातें करनेसे उनको गुलामीका असह्य दुःख कुछ कम जान पड़ता था।

वे दोनों समुद्रके किनारे एक पर्वतके ऊपर रास्ता खोदनेका काम प्रतिदिन करते थे। एक दिन एन्टोनिओने एकदम काम छोड़ दिया और समुद्रकी ओर नजर करके एक लंबी साँस छोड़ी। वह अपने मित्रसे कहने लगा—'समुद्रके उस पार मेरी बहुत-सी प्यारी वस्तुएँ हैं। हरेक क्षण मुझे ऐसा लगता है कि मानो मेरी स्त्री और लड़के समुद्रके किनारे आकर एक नजरसे इस ओर देख रहे हैं और यह निश्चय करके कि मैं मर गया हूँ, रो रहे हैं। मेरी इच्छा होती है कि मैं तैरकर उनके पास पहुँच जाऊँ। एन्टोनिओ जभी उस जगह काम करने जाता, तभी समुद्रकी ओर दृष्टि डालते ही उसके मनमें ये विचार उत्पन्न होते थे। बादको एक दिन एक जहाजको जाते देखकर उसने रोजरसे कहा—'मित्र! इतने दिनों

बाद अब हमारे दुःखोंका अन्त आ गया है। देखो, वह एक जहाज लंगर डालकर खड़ा है। यहाँसे दो-तीन कोससे अधिक दूरीपर नहीं है। हम समुद्रमें कूद पड़ें तो तैरते-तैरते उस जहाजतक पहुँच जा सकते है। यदि नहीं पहुँच सकेंगे और मर जायँगे तो इस दासत्वकी अपेक्षा वह मौत भी सौगुनी अच्छी होगी।'

यह सुनकर रोजरने कहा—'तुम इस तरह अपनेको बचा सको तो इससे मैं बड़ा सुखी होऊँगा। तुम देशमे पहुँच जाओगे तो मुझे भी अधिक दिन दुःख नहीं भोगना पड़ेगा। यदि तुम सही-सलामत इस दुःखसे छूटकर घर पहुँच जाओ तो मेरे घर जाकर मेरे माँ-बापकी खोज करना। बुढ़ापेके कारण तथा मेरे शोकसे शायद वे मर गये हों। पर देखना, यदि वे जीते हों तो उनसे कहना कि—'इतना कहते-कहते एन्टोनिओने उसे रोक दिया और वह बोला—'तुम ऐसा क्यों सोच रहे हो कि मैं तुमको इस अवस्थामें अकेला छोड़कर जाऊँगा? ऐसा कभी नहीं हो सकता, तुम और मैं जुदा नहीं। या तो हम दोनों छूटेंगे या दोनों ही मरेंगे।' एन्टोनिओकी बात सुनकर रोजर बोला—'तुम जो कहते हो वह ठीक है; पर मैं तैरना नहीं जानता, इसलिये तुम्हारे साथ कैसे जा सकता हूँ?' एन्टोनिओने कहा—'इसके लिये न घबराओ। तुम मेरी कमर पकड़ लेना। मैं तैरनेमें कुशल हूँ, इसलिये बिना किसी अड़चनके तुमको लेकर जहाजतक पहुँच जाऊँगा।' रोजरने कहा—'एन्टोनि! इसमें कोई आपत्ति नहीं, पर कदाचित् भयभीत होकर मैं तुम्हारी कमर छोड़ दूँ या खींचतान करके तुमको भी डुबा दूँ। इसलिये

ऐसा करना जरूरी नहीं है। मेरे भाग्यमें जो होना होगा, वह होगा। तुम अपने बचावका उपाय करो और व्यर्थ समय न गँवाओ। आओ, हम अन्तिम भेंट कर लें।'

इतना कहकर रोजरने आँसूभरी आँखोंसे एन्टोनिओका आलिङ्गन किया। तब एन्टोनिओने कहा—'मित्र! यह रोनेका समय नहीं, बार-बार ऐसा अवसर न प्राप्त होगा।'

एन्टोनिओने इतना कहकर अपने मित्रका उत्तर सुननेकी बाट न जोहते उसको ढकेलकर समुद्रमें गिरा दिया और अपने भी उसके पीछे कूद पड़ा। रोजरने समुद्रमें गिरते ही घबराकर जीवनकी आशा छोड़ दी, पर एन्टोनिओने उसको हिम्मत दिलाकर बहुत मेहनतसे अपनी कमर पकड़ा दी और वह तैरते हुए जहाजकी ओर जाने लगा।

उस जहाजके आदमियोंने इन दोनोंको पहाड़परसे कूदते हुए देखा था, पर इतनेमें ऐसा मालूम हुआ कि गुलामोंकी सँभाल रखने-वाले आदमी उनको पकड़नेके लिये नौका लेकर आ रहे हैं। रोजर इससे घबराकर बोला—'मित्र एन्टोनि! तुम मुझे छोड़कर अकेले चले जाओ। वह नाववाला मुझे पकड़ने लगेगा, इतनेमें तुम बिना बाधा जहाजपर पहुँच जाओगे। इसलिये अब तुम मेरी आशा छोड़कर अपना ही बचाव करो। नहीं, तो वे हम दोनोंको पकड़कर वापस ले जायँगे।'

इतना कहकर रोजरने एन्टोनिओकी कमर छोड़ दी। पर उत्तम प्रेमका प्रभाव देखिये! एन्टोनिओने उसको कमर छोड़कर पानीमें

डूबते हुए देखा और तुरंत ही उसको पानीसे बाहर निकालनेके लिये डुबकी मारी। थोड़ी देरतक वे दोनों पानीके ऊपर दीख न पड़े। इससे नौकावाले आदमी,—यह निश्चय न करके कि किधर जायँ—रुक गये। जहाजके आदमी डेकसे इस अद्भुत घटनाको देख रहे थे। उनमेंसे कुछ खलासी भी एक नावको समुद्रमें डालकर उनकी खोज करने लगे। उन्होंने थोड़ी देरतक चारों ओर बेकार प्रयत्न किया। फिर देखा कि एन्टोनिओ एक हाथसे रोजरको मजबूती-से पकड़े हुए है और दूसरे हाथसे नौकाकी ओर जानेके लिये बहुत मेहनत कर रहा है। खलासियोंने यह देखकर दयासे गद्गद होकर अपनेमें जितना बल था, उतने डाँड़ मारना शुरू किया। देखते-देखते वे वहाँ पहुँच गये और उन दोनोंको पकड़कर उन्होंने नावमे चढा लिया।

उस समय एन्टोनिओ इतना थक गया था कि मिनटभर और देर लगती तो वे दोनों पानीमे डूब जाते। 'तुम मेरे मित्रको बचाओ'—कहते-कहते वह अचेत हो गया। रोजर भी तबतक अचेत था, परंतु उसने कुछ ही क्षणोंमें आँखें खोलीं और एन्टोनिओको अचेत अवस्थामे पड़ा देखकर वह बहुत ही व्याकुल हो गया। एन्टोनिओके अचेतन शरीरका आलिङ्गन करके वह आँसू बहाते हुए कहने लगा—'मित्र! मैंने ही तुम्हारा वध किया है। तुमने मेरी गुलामी छुड़ाने और मेरे प्राण बचानेके लिये इतनी मेहनत की, पर मेरी ओरसे उसका यही बदला मिला। मैं बहुत ही नीच हूँ। नहीं तो तुम्हें मरा देखकर मैं क्यों जी रहा हूँ? तुमको खोकर अब मेरे जीनेसे क्या लाभ?'

इस प्रकार शोकातुर होकर वह एकदम खड़ा हो गया और यदि खलासी उसे बलपूर्वक रोक न लेते तो वह समुद्रमें कूद पड़ा होता। फिर वह बहुत ही विलाप और पश्चात्ताप करके कहने लगा—'क्यों तुमलोग मुझे रोकते हो? मेरे ही कारण इसके प्राण गये हैं।' इतना कहकर वह एन्टोनिओके शरीरके ऊपर पड़कर कहने लगा—'एन्टोनि! मैं जरूर तुम्हारा साथी बनूँगा। प्यारे खलासिओ! तुम्हें परमेश्वरकी शपथ है। तुम अब मुझको न रोको। मुझे अपने मित्रका साथी बनने दो।' पर इतनेमें ही एन्टोनिओने एक लंबी साँस ली। रोजर उसे देखकर आनन्दसे अधीर हो उठा और उच्च स्वरसे बोला—'मेरा मित्र जीवित है। मेरा मित्र जीवित है। जगदीश्वरकी कृपासे अबतक इसके प्राण नहीं गये हैं।' खलासी उसको होशमें लानेके लिये बहुत प्रयत्न करने लगे। थोड़ी देरके बाद एन्टोनिओने आँखें खोलकर अपने मित्रकी ओर दृष्टि डालते हुए कहा—'रोजर! तुम्हारी प्राणरक्षा हो गयी—इसके लिये जगदीश्वरको धन्यवाद दो।' उसके अमृत-जैसे वाक्य सुनकर रोजर इतना प्रसन्न हुआ कि उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी।

थोड़ी देरमें वह नाव जहाजपर पहुँच गयी। जहाजके सभी आदमी खलासियोंके मुँहसे सारी बातें सुनकर उनके ऊपर बहुत स्नेह दिखलाने लगे। वह जहाज माल्टाकी ओर जा रहा था। वहाँ पहुँचनेपर दोनों मित्रोंको किनारे उतार दिया गया और वहाँ से वे अपने-अपने घर गये और सुखसे रहने लगे।

सोनेका दान

एक धनी सेठने सोनेसे तुलादान किया। गरीबोंको खूब सोना बाँटा गया। उसी गाँवमें एक संत रहते थे। सेठने उनको भी बुलाया। वे बार-बार आग्रह करनेपर आ गये। सेठने कहा—'आज मैंने सोना बाँटा है, आप भी कुछ ले लें तो मेरा कल्याण हो।' संतने कहा—'भाई! तुमने बहुत अच्छा काम किया, परंतु मुझको सोनेकी आवश्यकता नहीं है।' धनीने फिर भी हठ किया। संतने समझा कि इसके मनमें धनका अहंकार है। संतने तुलसीके पत्तेपर राम-नाम लिखकर कहा—'भाई! मैं कभी किसीसे दान नहीं लेता। मेरा स्वामी मुझे इतना खाने-पहननेको देता है कि मुझे और किसीसे लेनेकी जरूरत ही नहीं होती। परंतु तुम इतना आग्रह करते हो तो इस पत्तेके बराबर सोना तौल दो।' सेठने इसको व्यंग समझा और कहा—'आप दिल्लगी क्यों कर रहे हैं, आपकी कृपासे मेरे घरमें सोनेका खजाना भरा है, मैं तो आपको गरीब जानकर ही देना चाहता हूँ।' संतने कहा—'भाई! देना हो तो तुलसीके पत्तेके बराबर सोना तौल दो।' सेठने झुँझलाकर तराजू मँगवाया और उसके एक पलड़ेपर पत्ता रखकर वह दूसरेपर सोना रखने लगा। कई मन सोना चढ़ गया; परंतु तुलसीके पत्तेवाला पलड़ा तो नीचे ही रहा। सेठ आश्चर्यमें डूब गया। उसने संतके चरण पकड़ लिये और कहा—'महाराज! मेरे अहंकारका नाश करके आपने बड़ी ही कृपा की। सच्चे धनी तो आप ही हैं।' संतने कहा—'भाई, इसमें मेरा क्या है। यह तो नामकी महिमा है। नामकी तुलना जगत्‌में किसी भी वस्तुसे नहीं हो सकती। भगवान्‌ने ही दया करके तुम्हें अपने नामका महत्त्व दिखलाया है। अब तुम भगवान्‌का नाम जपा करो; तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा।'

प्रभुकी वस्तु

एक भक्तके एक ही पुत्र था और वह बड़ा ही सुन्दर, सुशील, धर्मात्मा तथा उसे अत्यन्त प्रिय था। एक दिन अकस्मात् वह मर गया। इसपर वह प्रसन्न हुआ और उसने भगवान्‌का उपकार माना। लोगोंने उसके इस विचित्र व्यवहारपर आश्चर्य प्रकट करते हुए उससे पूछा—'पागल! तुम्हारा इकलौता बेटा मर गया है और तुम हँस रहे हो इसका क्या कारण है?' उसने कहा—'मालिकके बगीचेमें फूला हुआ बहुत सुन्दर पुष्प माली अपने मालिकको देकर प्रसन्न होता है या रोता है? मेरा तो कुछ है ही नहीं, सब कुछ प्रभुका ही है। कुछ समयके लिये उनकी एक चीज मेरी सँभालमें थी, इससे मेरा कर्तव्य था—मैं उसकी जी-जानसे देख-रेख करूँ, अब समय पूरा होनेपर प्रभुने उसे वापस ले लिया, इससे मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है और मैं उसका उपकार इसलिये मानता हूँ कि मैंने उनकी वस्तुको न मालूम कितनी बार अपना मान लिया था—न जाने कितनी बार मेरे मनमें बेईमानी आयी थी। उसकी देख-रेखमें भी मुझसे बहुत-सी त्रुटियाँ हुई थीं, परंतु प्रभुने मेरी इन भूलोंकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर मुझे कोई उलाहना नहीं दिया। इतनी बड़ी कृपाके लिये मैं उनका उपकार मानता हूँ तो इसमें कौन-सी आश्चर्यकी बात है?

मिट्टीका खेल

एक योगभ्रष्ट संत मरकर फिर पैदा हुए, परंतु उन्हें पूर्वजन्मकी याद थी, इसलिये वे अपने मनको लड़कपनसे ही भगवान्‌की ओर लगाये हुए थे। एक दिन वे अपनी मौजमें मिट्टीसे खेल रहे थे। राजाकी सवारी उधरसे निकली। राजाने अकेले ही मिट्टीसे खेलते हुए लड़केसे पूछा—'तू मिट्टीसे क्यों खेल रहा है?' बालक संतने उत्तर दिया—'शरीर मिट्टीसे ही बना है, मिट्टीमें ही मिल जायगा, इसलिये मिट्टीसे ही खेल रहा हूँ।' राजा उसकी बात सुनकर प्रसन्न हो गया। राजाने कहा—'तू मेरे साथ रहेगा?' बालकने कहा, 'जरूर रहूँगा, परंतु मेरी चार शर्तें हैं—मैं सोऊँ, तू सदा जागकर मेरी रक्षा कर; मैं खाऊँ, तू कुछ भी न खा; मैं पहनूँ, तू कुछ भी न पहन और मैं जहाँ जाऊँ, वहीं सदा मेरे साथ रह।' राजाने कहा—'तेरी शर्तें तो असम्भव हैं। मैं तुझे साथ भी रख सकता हूँ, तेरे सोनेपर रक्षाका प्रबन्ध भी कर सकता हूँ। मैं जो कुछ खाऊँ तुझे वही खिला सकता हूँ और जैसे गहने-कपड़े पहनूँ वैसे ही पहना सकता हूँ; परंतु मैं कभी सोऊँ नहीं, या खाऊँ-पहनूँ नहीं, यह कैसे हो सकता है?' इसपर संत बालकने कहा—'जब तू मेरी शर्तें ही पूरी नहीं कर सकता तब मुझे साथ क्या रक्खेगा? मेरा स्वामी तो ऐसा है जो स्वयं सदा जागता है और सोते-जागते सदा मेरी रक्षा करता है। स्वयं कुछ भी खाता-पहनता नहीं और मुझे मनचाहा खिलाता-पहनाता है और मेरा साथ तो वह कभी छोड़ता ही नहीं। ऐसे प्रभुको छोड़कर तेरे-जैसेके साथ रहनेके लिये मैं क्यों जाऊँ?'

स्वयं पालन करनेवाला ही उपदेश देनेका अधिकारी है

एक ब्राह्मणने अपने आठ वर्षके पुत्रको एक महात्माके पास ले जाकर उनसे कहा—'महाराजजी ! यह लड़का रोज चार पैसेका गुड़ खा जाता है और न दें तो लड़ाई-झगड़ा करता है । कृपया आप कोई उपाय बताइये ।' महात्माने कहा—'एक पखवाड़ेके बाद इसको मेरे पास लाना, तब उपाय बताऊँगा ।' ब्राह्मण पंद्रह दिनोंके बाद बालकको लेकर फिर महात्माके पास पहुँचा । महात्माने बच्चेका हाथ पकड़कर बड़े मीठे शब्दोंमें कहा—'बेटा ! देख, अब कभी गुड़ न खाना भला, और लड़ना भी मत !' इसके बाद उसकी पीठपर थपकी देकर तथा बड़े प्यारसे उसके साथ बातचीत करके

महात्माने उनको विदा किया । उसी दिनसे बालकने गुड़ खाना और लड़ना बिल्कुल छोड़ दिया ।

कुछ दिनोंके बाद ब्राह्मणने महात्माके पास जाकर इसकी सूचना दी और बड़े आग्रहसे पूछा—'महाराजजी ! आपके एक बारके उपदेशने इतना जादूका काम किया कि कुछ कहा नहीं जाता; फिर आपने उसी दिन उपदेश न देकर पंद्रह दिनोंके बाद क्यों बुलाया ? महाराजजी ! आप उचित समझें तो इसका रहस्य बतानेकी कृपा करें ।' महात्माने हँसकर कहा—'भाई ! जो मनुष्य स्वयं संयम-नियमका पालन नहीं करता, वह दूसरोंको संयम-नियमके उपदेश देनेका अधिकार नहीं रखता । उसके उपदेशमे बल ही नहीं रहता । मैं इस बच्चेकी तरह गुड़के लिये रोता और लड़ता तो नहीं था, परंतु मैं भोजनके साथ प्रतिदिन गुड़ खाया करता था । इस आदतके छोड़ देनेपर मनमें कितनी इच्छा होती है, इस बातकी मैंने स्वयं एक पखवाड़ेतक परीक्षा की और जब मेरा गुड़ न खानेका अभ्यास दृढ़ हो गया, तब मैंने यह समझा कि अब मैं पूरे मनोबलके साथ दृढ़तापूर्वक तुम्हारे लड़केको गुड़ न खानेके लिये कहनेका अधिकारी हो गया हूँ ।'

महात्माकी बात सुनकर ब्राह्मण लज्जित हो गया और उसने भी उस दिनसे गुड़ खाना छोड़ दिया । दृढ़ता, त्याग, सयम और तदनुकूल आचरण—ये चारों जहाँ एकत्र होते हैं, वहीं सफलता होती है ।

एक वाक्यसे जीवन पलटा

वारेन हेस्टिंग्सके जमानेमे गंगागोविन्दसिंह उनके प्रधान सहकारी थे। गंगागोविन्दसिंहका अत्याचार इतिहासप्रसिद्ध है। उन्होंने प्रजाको काफी लूटा था और अपने धनके भण्डार भरे थे। कृष्णचन्द्रसिंह इन्हींके पौत्र थे और ये उड़ीसाके दीवान थे तथा मौज-शौकमें अपनी जिंदगी बिताते थे। एक दिन ये अपनी जमींदारी-का काम देखकर घर लौट रहे थे। रास्तेमें इन्होंने एक लड़कीको अपने पितासे यह कहते सुना—'बाबूजी! रात हो गयी, पर अब-तक दीपक नहीं जलाया गया, चलो, मैं दीया जला दूँ।' लड़कीके इन सहज शब्दोंका विलास-वैभवमे रचे-पचे हुए युवक श्रीकृष्णचन्द्रपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनके हृदयमे अपूर्व भाव जाग उठा। उन्होंने सोचा—'लड़कीने कितनी अच्छी बात कही, मेरी जवानी बीत रही है। जिंदगीकी साँझ निकट आ रही है तो भी मैंने अभीतक अपने हृदयमें ज्ञानरूपी दीपक नहीं जलाया। मुझे भी बड़े भयानक भवसागरसे पार जाना है, पर मैंने अभीतक कोई तैयारी नहीं की।'

बस, इन विचारोंके आते ही वे संसारका त्याग करके वृन्दावन चले गये और वहाँ लालाबाबूके नामसे प्रसिद्ध हुए। इन्होंने लाखों रुपये लगाकर मन्दिर बनवाया तथा अपनी सारी सम्पत्ति परोपकारमें लगा दी और स्वयं मधुकरी माँगकर जीवन-निर्वाह करने लगे। एक साधारण-सी घटनाने उनकी जीवनयात्राके पथको बिल्कुल बदल दिया।

कहानीके द्वारा वैराग्य

एक दासी नित्यप्रति महारानीकी सेज बिछाया करती। एक दिन उसने बड़ी अच्छी सजाकर सेज बिछायी। गरमीके दिन थे। नदी-किनारेके महलमें ठंडी हवा आ रही थी। दासी थकी हुई थी, वह जरा सेजपर लेट गयी। लेटते ही बेचारीको नींद आ गयी। कुछ देरमें महारानी आयी; उसने आते ही जो दासीको अपनी सेजपर सोये देखा तो क्रोधसे आगबबूला हो गयी और दासीको जगाया। दासी बेचारी डरके मारे काँपने लगी। महारानीने उसे कोड़े लगाने शुरू किये। दो-चार कोड़े लगे तबतक तो वह उदास रही और रोती रही। पीछे उसका मुख प्रसन्न हो गया और वह हँसने लगी। महारानीको बड़ा आश्चर्य हुआ; उसने प्रसन्नताका और हँसनेका कारण पूछा। तब दासीने कहा—'महारानीजी! कसूर माफ हो, मुझे इस बातपर हँसी आ गयी कि मैं एक दिन थोड़ी-सी देरके लिये इस पलंगपर सो गयी, जिससे मुझपर इतने बेभाव कोड़े पड रहे हैं। ये महारानी रोज इसपर सोती हैं, इनपर पता नहीं कितने कोड़े पड़ेंगे। तब भी ये समझ नहीं रही हैं और अपने भविष्यपर ध्यान न देकर मुझे मार रही हैं। आपकी इस बेसमझीपर मुझे हँसी आ गयी।'

एक नाईने किसी राजा साहेबके तेल मलते-मलते यह कहानी कही और इसीसे उनको वैराग्य हो गया और वे राज छोड़कर घरसे निकल पड़े।

धूलपर धूल डालनेमें क्या लाभ

राँका-बाँका पति-पत्नी थे । बड़े भक्त और प्रभुविश्वासी थे । सर्वथा निःस्पृह थे । भगवान्‌ने उनकी परीक्षा करनेकी ठानी । एक दिन वे लकड़ी लाने जंगलको जा रहे थे । पति आगे-आगे चल रहे थे, पत्नी पीछे आ रही थी । राहमें किसी चीजकी राँकाजीको ठोकर लगी । उन्होंने देखा, सोनेकी मोहरोंसे भरी थैली खुली पड़ी है । वे उसे देखकर जल्दी-जल्दी धूल डालकर उसे ढकने लगे । इतनेमें बाँकाजी आ पहुँचीं । उन्होंने पतिसे पूछा, 'क्या कर रहे हैं ?' राँकाजीने पहले तो नहीं बताया, पर विशेष आग्रह करनेपर कहा—'सोनेकी मोहरें थीं । मैंने समझा, इनपर कहीं तुम्हारा मन न चल जाय; इसलिये इन्हें धूल डालकर ढक रहा था ।' बाँकाने हँसकर कहा—'वाह, धूलपर धूल डालनेमे क्या लाभ है ? सोनेमें और धूलमें भेद ही क्या है, जो आप इन्हें ढक रहे हैं ?'

अन्नदोष

एक महात्मा राजगुरु थे । वे अक्सर राजमहलमें राजाको उपदेश करने जाया करते । एक दिन वे राजमहलमे गये । वहीं भोजन किया । दोपहरके समय अकेले लेटे हुए थे । पास ही राजा-का एक मूल्यवान् मोतियोंका हार खूँटीपर टँगा था । हारकी तरफ महात्माकी नजर गयी और मनमें लोभ आ गया । महात्माजीने हार उतारकर झोलीमे डाल लिया । वे समयपर अपनी कुटियापर लौट आये । इधर हार न मिलनेपर खोज शुरू हुई । नौकरोंसे पूछ-ताछ होने लगी । महात्माजीपर तो संदेहका कोई कारण ही नहीं था । पर नौकरोंसे हारका पता भी कैसे लगता ! वे बेचारे तो बिल्कुल अनजान थे । पूरे चौबीस घंटे बीत गये । तब महात्माजीका मनोविकार दूर हुआ । उन्हें अपने कृत्यपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ । वे तुरंत राजदरबारमें पहुँचे और राजाके सामने हार रखकर बोले—'कल इस हारको मैं चुराकर ले गया था, मेरी बुद्धि मारी गयी, मनमें लोभ आ गया । आज जब अपनी भूल मालूम हुई तो दौड़ा आया हूँ । मुझे सबसे अधिक दुःख इस बातका है कि चोर तो मैं था और यहाँ बेचारे निर्दोष नौकरोंपर बुरी तरह बीती होगी ।'

राजाने हँसकर कहा—'महाराजजी ! आप हार ले जायँ यह तो असम्भव बात है । मालूम होता है जिसने हार लिया, वह आपके पास पहुँचा होगा और आप ठहरे दयालु, अतः उसे बचानेके लिये आप इस अपराधको अपने ऊपर ले रहे हैं ।'

महात्माजीने बहुत समझाकर कहा—'राजन् ! मैं झूठ नहीं

बोलता। सचमुच हार मैं ही ले गया था। पर मेरी निःस्पृह निर्लोभ वृत्तिमें यह पाप कैसे आया, मैं कुछ निर्णय नहीं कर सका। आज सवेरेसे मुझे दस्त हो रहे हैं। अभी पाँचवीं बार होकर आया हूँ। मेरा ऐसा अनुमान है कि कल मैंने तुम्हारे यहाँ भोजन किया था, उससे मेरे निर्मल मनपर बुरा असर पड़ा है और आज जब दस्त होनेसे उस अन्नका अधिकांश भाग मेरे अंदरसे निकल गया है, तब मेरा मनोविकार मिटा है। तुम पता लगाकर बताओ—वह अन्न कैसा था और कहाँसे आया था?'

राजाने पता लगाया। भण्डारीने बतलाया कि 'एक चोरने बढ़िया चावलोंकी चोरी की थी। चोरको अदालतसे सजा हो गयी; परंतु फरियादी अपना माल लेनेके लिये हाजिर नहीं हुआ। इसलिये वह माल राजमें जप्त हो गया और वहाँसे राजमहलमें लाया गया। चावल बहुत ही बढ़िया थे। अतएव महात्माजीके लिये कल उन्हीं चावलोंकी खीर बनायी गयी थी।'

महात्माजीने कहा—'इसीलिये शास्त्रने राज्यान्नका निषेध किया है। जैसे शारीरिक रोगोंके सूक्ष्म परमाणु फैलकर रोगका विस्तार करते हैं, इसी प्रकार सूक्ष्म मानसिक परमाणु भी अपना प्रभाव फैलाते हैं। चोरीके परमाणु चावलोंमें थे। उसीसे मेरा मन चञ्चल हुआ और भगवान्‌की कृपासे अतीसार हो जानेके कारण आज जब उनका अधिकांश भाग मलद्वारसे निकल गया, तब मेरी बुद्धि शुद्ध हुई। आहारशुद्धिकी इसीलिये आवश्यकता है!'

भगवान् सर्वव्यापक हैं

पाठशालामें गुरुजी लड़कोंको बतला रहे थे—'भगवान् सर्वव्यापक हैं। जमीन-आसमान, पृथ्वी-पाताल, जल-थल, घर-जंगल, पेड़-पत्थर, रात-दिन, सुबह-शाम—ऐसा कोई भी स्थान और समय नहीं है, जिसमें भगवान् न हों। वे बाहर-भीतरकी सब बातें सभी समय देखते-सुनते रहते हैं, उनसे छिपाकर कभी कोई कुछ भी नहीं कर सकता।' सुननेवाले विद्यार्थियोंपर गुरुजीके उपदेशका बड़ा असर पड़ा। विद्यार्थियोंमें एक किसानका लड़का भी था। पाठशालासे वह जब घर लौटकर आया, तब उसके पिताने कहा, 'चलो, एक काम

करना है।' वह पिताके साथ हो लिया। किसान उसे किसी दूसरे किसानके खेतमें ले गया और बोला—'बेटा! देख, इस समय यहाँ कोई देखता नहीं है। अपनी गायके लिये मैं खेतमेंसे थोड़ा-सा घास काट लाता हूँ। ज्यादा होगा तो बेच लेंगे। तू देखता रह, कोई आ न जाय।'

लड़का बैठ गया, परंतु सोचने लगा—'क्या पिताजी इस बातको नहीं जानते कि भगवान् सब समय, सब जगह, सभी बातोंको देखते रहते हैं।' किसान घास काटने लगा। कुछ देर बाद उसने पूछा-'बेटा, कोई देख तो नहीं रहा है।' अब लड़केको बोलनेका मौका मिल गया। उसने कहा—'पिताजी! आपके और मेरे सिवा यहाँ कोई आदमी तो नहीं है जो हमारे कामको देखे, लेकिन पिताजी! मेरे गुरुजीने बतलाया था कि ऊपर-नीचे, बाहर-भीतर, जल-थलमें भगवान् व्यापक है और वह सब समय सबकी बातें देखता रहता है। कोई कितना भी एकान्तमें करे, उससे छिपाकर किसी कामको कर ही नहीं सकता। हम लोग जो यह चोरी करते हैं, इसे भी भगवान् तो देखता ही है।' बच्चेके मुँहसे यह बात सुनकर किसान काँप गया। उसके हाथसे हँसिया गिर पड़ा और वह काटा हुआ घास वहीं छोड़कर बच्चेके साथ घर लौट आया। उस दिनसे उसने चोरी करना छोड़ दिया।

कर्तव्यपालनका महत्त्व

मद्रास-प्रान्तमें एक रेलका पायंटमैन था। एक दिन वह पायंट पकड़े खड़ा था। दोनों ओरसे दो गाड़ियाँ पूरी तेजीके साथ आ रही थीं। इसी समय भयानक काला सर्प आकर उसके पैरमे लिपट गया। सर्पको देखकर पायंटमैन डरा। उसने सोचा—'मै साँपके हटानेके लिये पायंट छोड़ देता हूँ तो गाड़ियाँ लड़ जाती हैं और हजारों नर-नारियोंके प्राण जाते हैं। नहीं छोडता तो साँपके काटनेसे मेरे प्राण जाते हैं।' भगवान्‌ने उसे सद्‌बुद्धि दी। क्षणभरमें ही उसने निश्चय कर लिया कि सर्प चाहे मुझे डँस ले, पर मैं पायंट छोड़कर हजारों नर-नारियोंकी मृत्युका कारण नहीं बनूँगा। वह अपने कर्तव्यपर दृढ़ रहा और वहाँसे जरा भी नहीं हिला। जिन भगवान्‌ने उसे सद्‌बुद्धि दी, उन्होंने ही उसे बचाया। गाड़ियोंकी भारी आवाजसे डरकर साँप उसका पैर छोड़कर भाग गया। पायंटमैनकी कर्तव्य-निष्ठासे हजारो मनुष्योंके प्राण बच गये। जब अधिकारियोंको यह बात मालूम हुई तो उन्होंने पायंटमैनको पुरस्कार देकर सम्मानित किया।

कुत्ता श्रेष्ठ है या मनुष्य ?

कोई महात्मा बैठे थे। उनके पास एक कुत्ता आकर बैठ गया। तब किसी असभ्य मनुष्यने महात्मासे पूछा—'तुम दोनोंमें श्रेष्ठ कौन है?' महात्माने कहा, 'यदि मैं प्रभुके सेवाके लिये सत्कर्म करता हूँ तब तो मैं श्रेष्ठ हूँ और यदि मैं भोग-विलासमे जीवन बिताता हूँ तो मेरे-जैसे सैकड़ों मनुष्योंसे यह कुत्ता श्रेष्ठ है।'

प्रेमोन्मत्तता

एक स्त्री अपने बहुत दिनों बाद आये हुए प्रेमीसे मिलनेके प्रेममें पगली हुई-सी चली जा रही थी। रास्तेमें बादशाहका पड़ाव था। बादशाह उस समय जाजम बिछाकर नमाज पढ़ रहे थे। प्रेमोन्मत्त हुई उस स्त्रीको रास्तेका कोई भान नहीं था, वह जाजमपर पैर रखकर आगे बढ़ गयी। बादशाहको गुस्सा तो आया, पर वे नमाज पढ़ रहे थे, इसलिये कुछ बोले नहीं। थोड़ी देरमें वह अपने प्रियतमसे मिलकर उसके साथ लौटी। बादशाहने उस स्त्रीको पास बुलाकर कहा—'अरी पापिनी! तुझे यह भी नहीं सूझा कि मैं नमाज पढ़ रहा हूँ और तू जाजमपर पैर रखकर चली गयी!' उस प्रेमहृदया स्त्रीने निर्भयतासे कहा—'जहाँपनाह! एक मामूली मनुष्यके प्रेममें पगली होनेसे मुझको आपकी जाजमका पता नहीं लगा, फिर भगवान्‌का ध्यान करते हुए आपने मुझको कैसे देखा? मालूम होता है आप केवल ऊपरसे ही नमाज पढ़ रहे थे, आपके मनमें भगवान् नहीं थे।'

उत्तर सुनकर बादशाहने अपनी भूल समझी और उस स्त्रीको धन्यवाद दिया।

विचित्र पञ्च

कलकत्तेमें श्रीलक्ष्मीनारायणजी मुरोदिया नामक एक संत-स्वभावके व्यापारी थे। एक बार किन्हीं दो भाइयोंमें सम्पत्तिको लेकर आपसमें झगड़ा हो गया और बँटवारेमें एक अँगूठीपर बात अड़ गयी। दोनों ही भाई उस अँगूठीको लेना चाहते थे। श्रीमुरोदियाजी पञ्च थे, उन्होंने समझाया कि एक भाई अँगूठी ले ले और दूसरा भाई कीमत ले ले, पर वे नहीं माने। तब मुरोदियाजीने युक्ति सोची और ठीक वैसी ही एक अँगूठी अपने पाससे बनवायी। फिर, जिस भाईके पास अँगूठी थी, उसको समझाया कि 'देखो, मैं उसे समझा दूँगा, पर आप अँगूठी पहनना छोड़कर उसे घरमें रख दीजिये ताकि उसको उसकी याद ही न आवे।' उसने बात मान ली। तदनन्तर दूसरे भाईके पास जाकर उसे अपनी बनवायी हुई अँगूठी देकर कहा कि 'देखो, मैंने तुमको अँगूठी ला दी है, परंतु इस बातको किसीसे भी कहना नहीं। नहीं तो तुम्हारा भाई अपनी हार समझकर दुखी होगा। अँगूठीको घरमें रख देना, उसे पहनना ही मत। तुम्हें अँगूठीसे काम था सो मिल गयी। अब इसकी चर्चा ही मत करना।' उसने खुशी-खुशी अँगूठी ले ली और बात मान ली। दोनों भाइयोंमें निपटारा और मेल हो गया। दो-तीन साल बाद जब यह भेद खुला, तब दोनों भाइयोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे अँगूठी लौटाने गये, पर मुरोदियाजीने यह कहकर कि, 'देखो मैं आपलोगोंसे बड़ा हूँ और इसलिये मुझे अधिकार है कि मैं अपनी ओरसे आपको कुछ उपहार दूँ' अँगूठी नहीं ली।

तैरना जानते हो या नहीं ?

एक नवशिक्षित शहरी बाबू नदीमें नावपर जा रहे थे। उन्होंने आकाशकी ओर ताककर केवटसे कहा—'भैया! तुम नक्षत्रविद्या जानते हो?' केवट बोला—'बाबूजी! मैं तो नाम भी नहीं जानता।' इसपर बाबूने हँसकर कहा—'तब तो तुम्हारा चौथाई जीवन व्यर्थ ही गया।' कुछ देर बाद बाबूने फिर पूछा—'भाई! तुम गणित पढ़े हो?' केवटने कहा—'बाबू! मैं तो नहीं पढ़ा!' बाबू बोले—'तब तो तुम्हारा आधा जीवन मुफ्तमें गया।' केवट बेचारा चुप रहा। थोड़ी देर बाद नदीके दोनों ओर पेड़ोंकी पंक्तियोंको देखकर बाबू बोले—'तो भैया! तुम वृक्ष-विज्ञान-शास्त्र तो जानते ही होगे?' केवट बोला—'बाबूजी! मैं तो कोई शासतर-बासतर नहीं जानता—नाव खेकर किसी तरह पेट भरता हूँ।' बाबूजी हँसकर बोले—'तब तो भैया तुम्हारे जीवनका तीन चौथाई हिस्सा बेकाम ही बीता।' यों बातचीत चल रही थी कि अकस्मात् जोरोंकी आँधी आ गयी। नाव डगमगाने लगी। देखते-ही-देखते नावमें पानी भर गया। केवटने नदीमें कूदकर तैरते हुए पूछा—'बाबूजी! आप तैरना जानते हैं या नहीं?' बाबूने कहा—'तैरना जानता तो मैं भी कूद न पड़ता। भैया! बता अब क्या होगा।' केवट बोला—'बाबूजी! अब तो सिवा डूबनेके और कोई उपाय नहीं है। आपने सारी विद्याएँ पढ़ीं, पर तैरना नहीं जाना तब सभी कुछ व्यर्थ है। अब तो भगवान्‌को याद कीजिये!' भवसागरसे तरनेकी भजनरूपी विद्या ही सच्ची विद्या है। इसे न पढ़कर जो केवल लौकिक विद्याओंके पण्डित बनकर अभिमान करते हैं, उन्हें तो डूबना ही पड़ता है।

नामनिन्दासे नाक कट गयी

एक बार भक्त हरिदासजी सप्तग्रामके जमींदार हिरण्य मजूमदार-के यहाँ हरिनामका माहात्म्य वर्णन करते हुए बोले कि—'भक्ति-पूर्वक हरिनाम लेनेसे जीवके हृदयमें जो भक्ति-प्रेमका संचार होता है, वही हरिनाम लेनेका फल है।' इसी बातचीतके सिलसिलेमें जमींदारके गोपाल चक्रवर्ती नामक एक कर्मचारीने हरिनामकी निन्दा की और यह कहा कि—'ये सब भावुकताकी बातें हैं। यदि हरिनामसे ही मनुष्यकी नीचता मिटती हो तो मैं अपनी नाक कटवा डालूँ।' हरिदासजीने भी बड़ी दृढ़तासे उत्तर दिया कि—'भाई! यदि हरिनाम-स्मरण और जपसे मनुष्यको मुक्ति न मिले तो मैं भी अपनी नाक कटवा डालूँगा।' कहते हैं कि दो-तीन महीने बाद ही गोपाल चक्रवर्तीकी नाक कुष्ठरोगसे गलकर गिर पड़ी। हरिनाम-निन्दाका फल प्रत्यक्ष हो गया।

सर गुरुदासकी कट्टरता

कलकत्ता हाईकोर्टके जज स्वर्गीय श्रीगुरुदास बनर्जी अपने आचार-विचार, खान-पानमे बडे कट्टर थे। 'माडर्न रिव्यू' के पुराने एक अंकमे श्रीअमल होमने इस सम्बन्धमे उनके जीवनकी एक घटनाका उल्लेख किया था। लार्ड कर्जनके समय जो 'कलकत्ता-विश्वविद्यालय-कमीशन' नियुक्त हुआ था, उसमे गुरुदास भी एक सदस्य थे। उसका कार्य समाप्त होनेपर शिमलासे वे वाइसरायके साथ उनकी स्पेशलमें कलकत्ते जा रहे थे। कानपुरमें वाइसरायने उन्हे अपने डब्बेमें बुला भेजा। दोनोमें बहुत देरतक कमीशनकी सिफारिशोंके सम्बन्धमे बातचीत होती रही, इतनेमें ही दोपहरके खानेका समय हो गया। वाइसरायने श्रीगुरुदाससे कहा कि 'जाइये, अब आप भी भोजन कीजिये।' उन्होंने इसके लिये धन्यवाद देते हुए कहा—'मैं रेलमें कुछ नहीं खाता।' यह सुनकर वाइसरायको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्हें विश्वास न हुआ। उन्होंने फिर पूछा तो उत्तर मिला—'मैं रेलमें कुछ गङ्गाजल रखता हूँ और केवल उसीको पीता हूँ।' इसपर वाइसरायने फिर पूछा 'तब फिर आपका लड़का क्या करेगा?' श्रीगुरुदासने कहा—'जबतक मैं उपवास करता हूँ, वह भला कैसे खा सकता है? घरकी बनी हुई उसके पास कुछ मिठाई है, भूख लगती है, तो वह उसे खा लेता है।' वाइसरायने कहा—'तो फिर मैं भी नहीं खाऊँगा, जबतक आप नहीं खाते। आगे किसी स्टेशनपर गाड़ी खड़ी रहेगी और वहाँ आप अपने नियमानुसार भोजन

कर लें।' श्रीगुरुदासने बहुत समझाया कि इसकी आवश्यकता नहीं है, आपको कष्ट होगा, पर वाइसरायने एक भी न सुनी और अपने ए० डी० सी० (शरीर-रक्षक) को तुरंत बुलाकर पूछा कि 'अगले किस स्टेशनपर गाड़ी खड़ी होगी ?' उसने उत्तर दिया—'हुजूर, इलाहाबादमें।' वाइसरायने कहा—'अच्छी बात है, जबतक डाक्टर बनर्जीका भोजन नहीं हो जाता, हम वहीं ठहरेंगे।' प्रयाग स्टेशनपर स्पेशल रुक गयी, पिता-पुत्र दोनोंने जाकर सङ्गमपर स्नान किया और त्रिवेणी-तटकी रेतीपर दाल-भात बना-खाकर जब लौटे, तब कहीं गाड़ी आगे बढ़ी।

श्रीगुरुदास कहा करते थे कि जहाँ, जिसके साथ, जो कुछ खा-पी लेनेसे जाति जाती है या नहीं, यह दूसरी बात है; पर इन नियमोंके पालनसे आत्मसंयम और अनुशासनकी कितनी अच्छी शिक्षा मिलती है, जिसका जीवनमें कुछ कम मूल्य नहीं है। नियमपालनमें किसीकी कट्टरता देखकर उसका उपहास भले ही किया जाय, पर हृदयमे उसके प्रति आदरभाव भी बिना जाग्रत् हुए न रहेगा। लार्ड कर्जन-सरीखे उद्दण्ड वाइसरायको भी इस कट्टर सनातनीके 'वहमों' का आदर करना पड़ा, परंतु आजकल तो अनुशासन और संयमका कुछ मूल्य ही नहीं है। उनसे तो स्वतन्त्रता और सुखमें बाधा पड़ती है। आजकल तो जीवनका मन्त्र है—'स्वतन्त्रता और भोग,' वैसा ही फल भी मिल रहा है।

जाको राखै साइयाँ मार सकै ना कोय

(१)

रामतारण चक्रवर्ती नामके एक सज्जन कलकत्तेमें किसी व्यापारी फार्ममें काम करते थे। उनके घरमें स्त्री और दस-बारह वर्षकी एक लड़कीके सिवा दूसरा कोई न था। एक दिन कार्यालयसे लौटनेपर उन्होंने देखा कि उनकी स्त्री और लड़की बड़े आनन्दसे एक पत्र पढ़ रही हैं। उन्होने पूछा, 'किसका पत्र है, क्या बात है ?' लड़की बोली—'क्या आपने नहीं सुना ? छोटे मामाका विवाह है, उन्होंने आपको और हमलोगोंको देश जानेके लिये विशेष आग्रहपूर्वक पत्र लिखा है।' रामतारण बाबू प्रसन्न नेत्रोंसे अपनी स्त्रीकी ओर देखकर बोले—'अच्छी बात है; चलो, इतने दिनों बाद तुम्हारे छोटे भाईकी एक व्यवस्था तो हुई। जरा पत्र तो देखूँ।' इतना कहकर वे पत्र पढ़ने लगे।

विवाहका दिन एक सप्ताह रह गया। रामतारण बाबू मालिक-से कुछ दिनोंके लिये छुट्टी लेकर देश जानेकी तैयारी करने लगे। धीरे-धीरे यात्राका दिन आ गया। विवाहोत्सवमें जानेके लिये उन्होंने सारे गहने तथा अच्छे-अच्छे कपड़े साथ ले लिये। हवड़ा स्टेशनपर जाकर यथासमय ट्रेनपर सवार होकर वे देशकी ओर चले। जिस स्टेशनपर उन्हें उतरना था, वहाँ गाड़ी दोपहरको पहुँची। स्टेशनसे उनकी ससुराल ११ मील दूर थी और बैलगाड़ीके सिवा वहाँ जानेके लिये दूसरी कोई सवारी न थी। रामतारण

बाबू एक बैलगाड़ी भाड़ा करके भगवान्‌का नाम लेकर चल पड़े। गाड़ीवान् उनके साथ तरह-तरहकी बातें करने लगा और सरलहृदय रामतारण बाबूने भी निष्कपट भावसे सारी बातें उससे कह डालीं। यहाँतक कि वे विवाहमें जा रहे हैं तथा साथमें गहने-कपड़े तथा रुपये-पैसे हैं—यह बात भी उनके मुँहसे निकल गयी। चक्रवर्ती महाशय यदि इन बातोंके बीचमें गाड़ीवानके मुँहकी ओर विशेष ध्यान देकर देख लेते तो उन्हें मालूम हो जाता कि उसके दोनों नेत्र कितने कुटिल और हिंस्र-भावसे भर गये हैं, परंतु अत्यन्त सरलहृदय होनेके कारण वे कुछ भी ताड़ न सके।

बैलगाड़ी धीरे-धीरे एक वनके बाद दूसरे वन, एक मैदानके बाद दूसरे मैदानको पार करती हुई चली। रामतारण बाबू अपनी स्त्री और लड़कीको नाना प्रकारके प्राकृतिक दृश्य दिखलाते हुए प्रसन्न चित्तसे विभिन्न प्रकारकी बातें करते रहे। इतनेमें गाड़ीवानने एक नदीके किनारे पहुँचकर गाड़ीको रोक दिया। नदीमें उस समय बड़ी भयानक धारा बह रही थी। गाड़ीसे पार करनेपर विपत्तिकी सम्भावना थी। नदी उतनी गहरी नहीं थी, लेकिन बहुत चौड़ी थी, अतएव चक्रवर्ती महाशय बहुत डर गये। गाड़ीवानने चक्रवर्ती महाशयकी ओर देखकर कहा—'बाबूजी! समीप ही हमारा परिचित गाँव है। हम वहींसे किसीको बुला लाते हैं। एक और आदमीकी सहायता मिलनेसे नदी पार होनेमें विशेष कष्ट न होगा।' चक्रवर्तीजी उसीमें राजी हो गये। तब गाड़ीवानने उन लोगोंको गाड़ीसे उतरनेके लिये कहकर बैलोंको गाड़ीसे खोल दिया। बैल छुट्टी पाकर आनन्दसे नदीके किनारे घास चरने लगे।

लगभग आध घंटेके बाद गाड़ीवान एक दूसरे आदमीको साथ लेकर पहुँचा। उस दूसरे आदमीकी यमदूतके समान मुखाकृति तथा हिंसाभरी क्रूरदृष्टि देखकर चक्रवर्तीजी मन ही-मन डरने लगे; परंतु उनके मुँहसे कोई बात न निकल सकी। गाड़ीवान और उसका साथी दोनों चक्रवर्तीजीके समीप आकर सामने खड़े हो गये और तड़ककर बोले कि 'तुम्हारे पास जो कुछ है, सो तुरंत दे दो; नहीं तो इस छुरेसे तुम्हारा काम तमाम करके नदीमे डुबो देंगे।' इतना कहकर दोनोंने बडी तेज शान धराये हुए छुरे निकाल लिये। चक्रवर्ती महाशय, उनकी स्त्री और लड़की--सब डरकर चिल्ला उठे। दोनों डाकू छुरे हाथमें लिये उनकी ओर बढे। चक्रवर्ती महाशय बहुत अनुनय-विनय करने लगे और प्राण-रक्षाके लिये दोनों डाकुओंके चरणोंपर गिर पड़े। डाकुओंने कहा—'तुम्हारे पास जो कुछ गहने-कपड़े और रुपये-पैसे है, सब अभी हमारे हवाले कर दो।' चक्रवर्तीजीने कोई उपाय न देखकर सारे रुपये तथा गहने दोनों डाकुओंको दे दिये। धन हथियानेके बाद दोनों डाकू बोले कि 'यदि तुम बचे रहोगे तो पुलिसमे खबर देकर हमको पकड़वा दोगे। अतएव तुमलोगोंको मारकर हम इस नदीमे डुबा देंगे।'

इतना कहकर दोनों डाकू छुरे लिये उनकी ओर बढे। चक्रवर्तीजी और उनकी लड़की प्राणके भयसे भीत होकर रोते-रोते विपद्-विदारण भगवान् मधुसूदनको जोर-जोरसे पुकारने लगे। डाकू छुरे भोंक ही रहे थे कि अचानक एक अघटन घटना घटी।

दोनों बैल समीप ही घास चर रहे थे। कोई नहीं कह सकता

कि क्या हुआ, पर दोनों बैल सींग नीचे करके आकर बिजलीकी तरह टूट पडे और दोनों डाकुओंको सींगोंसे मारने लगे। सींगोंकी भयानक चोटसे दोनों डाकू घायल होकर दूर गिर पड़े। जहाँ-जहाँ सींग लगे थे, वहाँ-वहाँसे बहुत जोरसे खून बहने लगा। वे वेदनासे छटपटाते हुए मिट्टीमें लोटने लगे। सहसा इस अद्भुत घटनाको देखकर चक्रवर्ती महाशय, उनकी स्त्री और लड़की विस्मयसे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर पत्थरके समान स्तब्ध रह गये। इसी बीच उसी मार्गसे दूसरे राही आ निकले। उन्होंने इस भीषण दृश्यको देखकर चक्रवर्ती महाशयसे पूछ-ताछ की। चक्रवर्तीजीने निष्कपट भावसे सारी बातें कह डालीं। उन राहियोंमें एक आदमी चौकीदार था। वह उसी समय उन दोनों डाकुओंको बाँधकर थानेमें खबर देने चला। चक्रवर्तीजीने दूसरे राहियोंकी सहायतासे एक दूसरी बैलगाड़ी ठीक करके अपने गन्तव्य स्थानकी राह ली।

अदालतमें मुकदमा चलनेपर दोनों डाकुओंको कठोर कारागारका दण्ड मिला। चक्रवर्तीजीने बहुत प्रयत्न करके उन दोनों बैलोंको खरीदकर अपने घरमें रक्खा और उनकी सेवा की। इसके बाद जब कभी भी कोई उस घटनाके विषयमें उनसे पूछता तो वे भक्तिसे गद्गदचित्त होकर कहते कि 'कौन कहता है भगवान् जीवकी करुण प्रार्थना नहीं सुनते ? नहीं तो, उनके बिना इन दो अबोध प्राणियों (बैलों) को दोनों डाकुओंका दमन करनेके लिये किसने प्रेरित किया? ये यन्त्र हैं, वे यन्त्री हैं'—इतना कहकर चक्रवर्ती महाशय भावावेशमें रो पड़ते।

जाको राखै साइयाँ मार सकै ना कोय

(२)

डेवन नगरके बब्बाकूम्ब (Babbacomb) गाँवके निवासी जॉन ली (j^ohn Lee) की घटना ऐसी है जिसपर जल्दी विश्वास नहीं होता, किंतु है वह सोलहों आने सत्य। श्रीमती केयीज (Nrs' Keyes) की हत्याका अभियोग लगाकर लीको फाँसीकी आज्ञा हो गयी। मृत्युसे तनिक भी भयभीत होनेकी अपेक्षा, लीने न्यायाधीशोंके समक्ष उनकी सम्मतिके विरुद्ध अपनेको निर्दोष बताया और कहा, 'मैंने यह काम नहीं किया है। भगवान् जानते हैं कि मैं निर्दोष हूँ। वे कभी मुझे फाँसीसे मरने नहीं देंगे। उन्होंने मुझसे निर्भय रहनेके लिये कहा है।'

उधर फाँसीकी सारी व्यवस्था हो गयी। रस्सीकी जाँचके लिये एक पुतला लटकाया गया। सब कुछ ठीक साबित हुआ। इस दृश्यको देखनेके लिये एक उन्मत्त भीड़ साँस खींचे खड़ी थी।

सिपाहियोंने लीको यथास्थान खड़ा कर दिया । फिर उसको एक काली कुलही उढ़ाकर खटका खींच लिया गया। पर ली जहाँ-का-तहाँ ही खड़ा रह गया । आश्चर्यचकित होकर एक निरीक्षक सिपाही कैदीकी जगह स्वयं जाकर खड़ा हो गया । इस बार जब खटका खींचा गया, तब सिपाही धड़ामसे नीचे आ गिरा और उसका एक पैर भी टूट गया । फाँसीकी सजाको एक सप्ताहके लिये स्थगित कर दिया गया । पर दूसरी बार भी लीको फंदेमें लटकानेकी चेष्टा फिर व्यर्थ सिद्ध हुई । जबतक पुतलोंको लटकाकर परीक्षा की जाती तबतक तो खटकेका खींचना सार्थक होता, पर जब लीको वहाँ लाकर खड़ा कर दिया जाता तब खटका काम ही नहीं करता । उस स्थानका अधिकारी शरीफ, एक धर्मभीरु और श्रद्धालु पुरुष था । उसने तार देकर गृहसचिवसे परामर्श माँगा । वहाँसे यही कठोर उत्तर आया 'फाँसीका काम पूरा करो ।'

स्थानीय नागरिकोंने अत्यन्त उत्तेजित होकर लीको छोड़ दिये जानेकी माँग की । परंतु शरीफ बेचारेको तो हुकुम बजाना था । उसने फिर इस घोर कर्मको पूरा करनेकी चेष्टा की, परंतु वह सफल नहीं हुआ । चार पृथक्-पृथक् दिन फाँसी देनेका प्रयत्न किया गया पर हर बार खटकेका यन्त्र कुण्ठित हो जाता । इतनेमें गृहसचिवका फिर शीघ्र ही तार आ गया । जॉन लीके प्राणदण्डकी आज्ञा रद्द कर दी गयी थी । कुछ समय बाद उसको क्षमा प्रदान करके छोड़ भी दिया गया ।

विवेक

उन दिनों इंगलैंडमें लोग तलवार बाँधे घूमा करते और द्वन्द्व-युद्धसे इनकार करना बहुत बड़ी कायरता समझी जाती। एक दिन एक नवयुवकने बहादुरीका बीड़ा उठाकर महारानी एलिजाबेथके विशेष सम्मानपात्र सर वाल्टर रेलेको द्वन्द्व-युद्धके लिये ललकारा। सर वाल्टर रेलेने अस्वीकार कर दिया, तब उस असभ्य नवयुवकने निन्दा करके उनके मुँहपर थूक दिया। तलवार चलानेमें अत्यन्त निपुण सर वाल्टर रेलेने इस प्रकार अपमानित होनेपर भी धीरजके साथ कहा—'मैं अपने मुँहपर रूमाल फिराकर जिस आसानीसे तुम्हारा थूक पोंछ सकता हूँ, उतनी ही आसानीसे तुम्हारी छातीमे लगे हुए तलवारके घावको पोंछ सकता अथवा बिना कारण ही नर-हत्या करनेके पापसे बचनेका कोई उपाय होता तो मैं अभी तुम्हारे साथ तलवार लेकर लड़नेको तैयार हो जाता।'

नीचा सिर क्यों ?

एक सज्जन बड़े ही दानी थे, उनका हाथ सदा ही ऊँचा रहता था; परंतु वे किसीकी ओर नजर उठाकर देखते नहीं थे। एक दिन किसीने उनसे कहा—'आप इतना देते हैं पर आँखें नीची क्यों रखते हैं? चेहरा न देखनेसे आप किसीको पहचान नहीं पाते, इसलिये कुछ लोग आपसे दुबारा भी ले जाते हैं।' इसपर उन्होंने कहा—'भाई!

देनहार कोउ और है देत रहत दिन रैन।
लोग भरम हम पर धरैं याते नीचे नैन॥

देनेवाला तो कोई दूसरा (भगवान्) ही है। मैं तो निमित्त-मात्र हूँ। लोग मुझे दाता कहते हैं। इसलिये शर्मके मारे मैं आँखें ऊँची नहीं कर सकता।'

ग्रामीणकी ईमानदारी

एक धनी व्यापारी मुसाफिरीमें रात बितानेके लिये किसी छोटे गाँवमें एक गरीबकी झोंपड़ीमें ठहरा । वहाँसे जाते समय वह अपनी सोनेकी मोहरोंकी थैली वहीं भूल गया । तीन महीने बाद वही व्यापारी फिर उसी रास्ते जा रहा था । दैवसंयोगसे उसी गाँवमें रात हुई और वह उसी गरीबके घर जाकर ठहरा । मोहरोंकी थैली रास्तेमें कहाँ गिरी थी, इसका उसे कुछ भी पता नहीं था । इसलिये उसने उस थैलीकी तो आशा ही छोड़ दी थी । झोंपड़ीमें आकर ठहरते ही झोंपड़ीके स्वामीने अपने-आप ही आकर कहा—'सेठजी ! आपकी एक मोहरोंकी थैली यहाँ रह गयी थी, उसे लीजिये । आपका नाम-पता न जाननेके कारण मैं अबतक थैली नहीं भेज सका । मैंने उसे अबतक धरोहरके रूपमें रख छोड़ा था ।' बूढ़े-दरिद्र ग्रामीणकी ईमान-दारीपर व्यापारी मुग्ध हो गया और वह इतना कृतज्ञ हुआ कि उसका गुण गाते-गाते थका ही नहीं, तथा अन्तमें बहुत आग्रह करके उसके लड़केको अपने साथ लेता गया ।

अभिमान

शेख सादी लड़कपनमें अपने पिताके साथ मक्का जा रहे थे। वे जिस दलके साथ जा रहे थे, उसका नियम था—आधी रातको उठकर प्रार्थना करना। एक दिन आधी रातके समय सादी और उनके पिता उठे। प्रार्थना की। परंतु दूसरे लोगोंको सोते देखकर सादीने पितासे कहा—'देखिये—ये लोग कितने आलसी हैं, न उठते हैं, न प्रार्थना करते हैं।'

पिताने कड़े शब्दोंमें कहा—'अरे सादी! बेटा! तू भी न उठता तो अच्छा होता। जल्दी उठकर दूसरोंकी निन्दा करनेसे तो न उठना ही ठीक था।'

सच्ची शिक्षा

रविशंकर महाराज एक गाँवमें सवा सौ मन गुड़ बाँट रहे थे, एक लड़कीको वे जब गुड़ देने लगे, तब उसने इन्कार करते हुए कहा—'मैं नहीं लूँगी।'

'क्यों?' महाराजने पूछा।

'मुझे माँने कहा है कि यों नहीं लेना चाहिये।'

'तो कैसे लेना चाहिये?'

'ईश्वरने दो हाथ तथा दो पैर दिये हैं और उनके बीचमें पेट दिया है। इसलिये मुफ्त कुछ भी नहीं लेना चाहिये। यह तो आप मुफ्त दे रहे हैं, मजदूरीसे मिले तो ही लेना चाहिये।'

महाराजको आश्चर्य हुआ। इसको ऐसी शिक्षा देनेवाला कौन है, यह जाननेके लिये उन्होंने पूछा—'तुझे यह सीख किसने दी?'

'मेरी माँने।'

महाराज उसकी माँके पास गये और पूछा—'तुमने लड़कीको यह सीख कैसे दी?'

'क्यो महाराज! मैने इसमें नयी बात क्या कही? भगवान्‌ने हाथ-पग दिये हैं, तब मुफ्त क्यों लेना चाहिये?'

'तुमने धर्मशास्त्र पढ़े हैं?'

'ना'

'तुम्हारी आजीविका किस प्रकार चलती है?'

'भगवान् सिरपर बैठा है। मैं लकड़ी काट लाती हूँ और उससे अनाज मिल जाता है। लड़की राँध लेती है।' यों मजदूरीसे हमारा गुजरान सुख-संतोषके साथ निभ रहा है।

'तो इस लड़कीके पिताजी ....।'

वह बहिन उदास हो गयी, कुछ देर ठहरकर बोली—'लड़की-के पिता थोड़ी उम्र लेकर आये थे। जवानीमें ही वे हमें अकेले छोड़कर चले गये। पर लगभग तीस बीघे जमीन और दो बैल वे छोड़ गये थे। लेकिन मैंने विचार किया कि इस सम्पत्तिमें मेरा क्या लेना-देना है ? मैं कब इसके लिये पसीना बहाने गयी थी ? अथवा यदि मैं पुरानी बुढ़िया होती या अपंग अथवा अशक्त होती तो अपने लिये सम्पत्तिका उपयोग भी करती। परंतु ऐसी तो मैं थी नहीं। मेरे मनमें आया कि इस सम्पत्तिका क्या करूँ और भगवान्‌ने ही मुझे यह सुझाव दिया कि यदि यह सम्पत्ति गाँवके किसी भलाईके काममें लगा दी जाय तो बहुत अच्छा हो। मैंने सोचा, ऐसा कौन-सा कार्य हो सकता है—मेरी समझमें यह आया कि इस गाँवमें जलकी बहुत तकलीफ है। इसलिये कुँआ बनवा दूँ। मैंने सम्पत्ति बेच दी और उससे मिली हुई रकम एक सेठको सौंपकर उनसे कहा कि 'आप इन पैसोंसे एक कुँआ बनवा दें।' सेठ भले आदमी थे। उन्होंने परिश्रम और कोर-कसर करके कुएँके साथ ही उसी रकममेंसे पशुओंके जल पीनेके लिये खेल भी बनवा दी।'

इस प्रकार उस बहिनने पतिकी सम्पत्तिका हक छोड करके उसका सद्व्यय किया। उसे नहीं तो उसके हृदयको तो इतनी शिक्षा अवश्य मिली होगी कि 'मैं जो पतिको ब्याही हूँ सो सम्पत्तिके लिये नहीं, पर ईश्वरकी—सत्यकी प्राप्तिके मार्गमें आगे बढ़नेके लिये ही मैं ब्याही हूँ।' इस प्रकारकी समझ तथा संस्कारसे बढ़कर और कौन-सी शिक्षा हो सकती है ?

त्यागी कौन !

एक बहुत बड़े धनी और विद्वान् जमींदारकी एक दिन एक महात्मासे भेंट हो गयी। महात्मा बड़े त्यागी थे। जमींदारने उन्हें एक लंगोटीका कपड़ा देना चाहा, परंतु उन्होंने आवश्यकता न होनेसे स्वीकार नहीं किया। कुछ समयतक साधु-सङ्ग करनेपर जमींदारके मनमें भी वैराग्यका भाव आया और उसे त्यागकी महत्ता दिखायी दी। इसपर उसने महात्मासे कहा—'स्वामीजी महाराज! आपको और आपके त्यागको धन्य है।'

महात्माने बहुत विनयके साथ मधुर शब्दोंमे कहा—'भाई! बेसमझ लोग मुझे भले ही त्यागी कहकर मेरी प्रशंसा करें, असलमें मैं तो बड़ा ही स्वार्थी हूँ। तुम्हारे-सरीखा सुशिक्षित पुरुष मुझे त्यागी कैसे बता सकता है? मैं तो सदा रहनेवाले सर्वोपरि अमूल्य धनकी चाह करता हूँ और उसके लिये मैंने नगण्य विनाशी वस्तुओंको छोड़ा है। वस्तुतः त्यागी तो तुम हो जो उस असली धनकी बात जाननेपर भी उसके लिये कोई प्रयत्न नहीं करते।'

महात्माका जीवन-चरित्र कैसे लिखना चाहिये

एक बहुत बड़े विद्वान् एक महात्माके अनन्य भक्त थे। किसी मित्रने उनसे पूछा—'पण्डितजी! महात्माजी महान् योगी और पहुँचे हुए महापुरुष थे। उनके जीवनकी बहुत-सी छिपी हुई बातोंको भी आप जानते हैं, फिर आप उनका जीवन-चरित्र क्यों नहीं लिखते?' पण्डितजीने बड़ी गम्भीरताके साथ कहा—'मैं महात्माजीका जीवन-चरित्र लिखनेके प्रयत्नमें लग रहा हूँ, मैंने कुछ आरम्भ भी कर दिया है।' उस मित्रने फिर आतुरताके साथ पूछा—'जीवन-चरित्र कबतक प्रकाशित हो जायगा पण्डितजी?' यह सुनकर पण्डितजीने मुसकराकर कहा—'आपने शायद यह समझा होगा कि मैं महात्माजीका जीवन-चरित्र कागजोंपर लिख रहा हूँ। ऐसी बात नहीं है। आप भूलते हैं। मेरे विचारसे तो महात्माजीका जीवन-चरित्र मनुष्यके जीवनमें लिखा जाना चाहिये, और मैं तो यथासाध्य उनके जीवनको अपने जीवनमें उतारनेकी ही कोशिश कर रहा हूँ।'

वैष्णवकी नम्रता

एक वैष्णव वृन्दावन जा रहा था। रास्तेमें एक जगह संध्या हो गयी। उसने गाँवमें ठहरना चाहा, पर वह सिवा वैष्णवके और किसीके घर ठहरना नहीं चाहता था। उसे पता लगा—बगलके गाँवमें सभी वैष्णव रहते हैं। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने गाँवमें जाकर एक गृहस्थीसे पूछा—'भाई! मैं वैष्णव हूँ। सुना है इस गाँवमें सभी वैष्णव हैं। मैं रातभर ठहरना चाहता हूँ।' गृहस्थने कहा—'महाराज! मैं तो नराधम हूँ, मेरे सिवा इस गाँवमें और सभी वैष्णव हैं। हाँ, आप कृपा करके मुझे आतिथ्य करनेका सुअवसर दें तो मैं अपनेको धन्य समझूँगा।' उसने सोचा, मुझे तो वैष्णवके घर ठहरना है। इसलिये वह आगे बढ़ गया। दूसरे दरवाजेपर जाकर पूछा, तो उसने भी अपने यहाँ ठहरनेके लिये तो बहुत नम्रताके साथ प्रार्थना की पर कहा यही कि 'महाराज! मैं तो अत्यन्त नीच हूँ। मुझे छोड़कर यहाँ अन्य सभी वैष्णव हैं।' वह गाँवभरमें भटका परंतु किसीने भी अपनेको वैष्णव नहीं बताया वरं सभीने नम्रतापूर्वक अपनेको अत्यन्त दीन-हीन बतलाया। गाँवभरकी ऐसी विनय देखकर उसकी भ्रान्ति दूर हुई। उसने समझा 'वैष्णवता-का अभिमान करनेसे ही कोई वैष्णव नहीं होता। वैष्णव तो वही है जो भगवान् विष्णुकी भाँति अत्यन्त विनम्र है।' उसकी अन्तर्दृष्टि खुल गयी और उसने अपनेको सबसे नीचा समझकर एक वैष्णवके घरमें निवास किया।

बुढ़ियाकी झोंपड़ी

किसी राजाने एक जगह अपना महल बनवाया। उसके बगलमें एक गरीब बुढ़ियाकी झोंपड़ी थी। झोंपड़ीका धुआँ महलमें जाता था, इसलिये राजाने बुढ़ियाको अपनी झोंपड़ी वहाँसे हटा लेनेकी आज्ञा दी। राजाके सिपाहियोंने बुढ़ियासे झोंपड़ी हटा लेनेको कहा, पर उसने कोई उत्तर नहीं दिया। तब वे लोग उसे डाँट-डपटकर राजाके पास ले गये। राजाने पूछा—'बुढ़िया! तू झोंपड़ी हटा क्यों नहीं लेती? मेरा हुक्म क्यों अमान्य करती है?' बुढ़ियाने कहा—'महाराज! आपका हुक्म तो सिर माथेपर; पर आप क्षमा करें, मैं एक बात आपसे पूछती हूँ। महाराज! मैं तो आपका इतना बड़ा महल और बाग-बगीचा सब देख सकती हूँ, पर आपकी आँखोंमें मेरी यह टूटी झोंपड़ी क्यों खटकती है? आप समर्थ हैं, गरीबकी झोंपड़ी उजड़वा सकते हैं; पर ऐसा करनेपर क्या आपके न्यायमें कलङ्क नहीं लगेगा?'

बुढ़ियाकी बात सुनकर राजा लज्जित हो गये और बुढ़ियाको धन देकर उसे आदरपूर्वक लौटा दिया।

पंजाब-केसरीकी उदारता

पंजाब-केसरी महाराज रणजीतसिंह कहीं जा रहे थे। अकस्मात् एक ढेला आकर उनके लगा। महाराजको बड़ी तकलीफ हुई। साथी दौड़े और एक बुढ़ियाको लाकर उनके सामने उपस्थित किया।

बुढ़िया भयके मारे काँप रही थी। उसने हाथ जोड़कर कहा—'सरकार! मेरा बच्चा तीन दिनोंसे भूखा था, खानेको कुछ नहीं मिला। मैंने पके बेलको देखकर ढेला मारा था। ढेला लग जाता तो बेल टूट पड़ता और उसे खिलाकर मैं बच्चेके प्राण बचा सकती, पर मेरे अभाग्यसे आप बीचमें आ गये। ढेला आपको लग गया। मैं निर्दोष हूँ, सरकार! मैंने ढेला आपको नहीं मारा था। क्षमा कीजिये।'

बुढ़ियाकी बात सुनकर महाराज रणजीतसिंहजीने अपने आदमियोंसे कहा—'बुढ़ियाको एक हजार रुपये और खानेका सामान देकर आदरपूर्वक घर भेज दो।'

लोगोंने कहा—'सरकार! यह क्या करते हैं। इसने आपको ढेला मारा, इसे तो कठोर दण्ड मिलना चाहिये।'

रणजीतसिंह बोले—'भाई! जब बिना प्राणोंका तथा बिना बुद्धिका वृक्ष ढेला मारनेपर सुन्दर फल देता है तब मैं प्राण तथा बुद्धिवाला होकर इसे दण्ड कैसे दे सकता हूँ।'

विचित्र बहुरूपिया

पुरानी बात है—अयोध्यामें एक संत रहते थे, वे कहीं जा रहे थे। किसी बदमाशने उनके सिरपर लाठी मारकर उन्हें घायल कर दिया। लोगोंने उन्हें बेहोश पडे देखकर दवाखानेमे पहुँचाया। वहाँ मरहमपट्टी की गयी। कुछ देरमें उनको होश आ गया। इसके बाद दवाखानेका एक कर्मचारी दूध लेकर आया और उनसे बोला—'महाराज! यह दूध पी लीजिये।' संतजी उसकी बात सुनकर हँसे और बोले—'वाह भाई! तुम भी बड़े विचित्र हो! पहले तो सिरमें लाठी मारकर घायल कर दिया और अब बिछौनेपर सुलाकर दूध पिलाने आ गये।' बेचारा कर्मचारी संतकी बातको नहीं समझ सका और उसने कहा—'महाराज! मैंने लाठी नहीं मारी थी। वह तो कोई और था। मैं तो इस दवाखानेका सेवक हूँ।' संतजी बोले—'हाँ हाँ, मैं जानता हूँ। तुम बडे बहुरूपिये हो। कभी लाठी मारनेवाले बदमाश—डाकू बन जाते हो, तो कभी सेवक बनकर दूध पिलाने चले आते हो। जो न पहचानता हो, उसके सामने फरेब-जाल करो, मैं तो तुम्हारी सारी माया जानता हूँ, मुझसे नहीं छिप सकते।' अब उसकी समझमें आया कि संतजी, सभीमें अपने प्रभुको देख रहे हैं।

डाइन खा गयी

दो भाई राजपूत जवान ऊँटपर चढ़कर कमाईके लिये परदेश जा रहे थे। उन्हे दूरसे ही एक साधु दौड़ता सामने आता दिखायी दिया। पास आते-आते उसने कहा—'भाइयो! आगे मत जाना, बड़ी भयावनी डाइन बैठी है। पास जाओगे तो खा ही जायगी।' राजपूत सवारोंने साधुसे ठहरनेको कहकर उससे इसका स्पष्टीकरण कराना चाहा, पर वह तो दौड़ता हो चला गया। ठहरा नहीं।

उसके चले जानेपर राजपूत भाइयोंने विचार किया कि 'साधु निहत्था है, डर गया है। हमारी जवान उम्र है, शरीरमें काफी बल है, बंदूक-तलवार हमारे पास है। डाइन हमारा क्या कर लेगी। फिर, डरना तो कायरोंका काम है। हम तो बहादुर राजपूत है।' यों विचारकर वे आगे चल दिये। कुछ दूर जानेपर उन्हें एक जगह सोनेकी मोहरोंकी थैलियाँ पड़ी दिखायी दीं। वे ठहर गये, ऊँटसे उतरकर देखा तो सचमुच सोनेकी मोहरे हैं और गिननेपर पूरी दस हजार मोहरें हुई। उन्होंने कहा—'बड़ा चालाक था वह साधु। वह जरूर कोई सवारी लाने गया है। हमलोगोंको डाइनका डर दिखाकर वह चाहता था कि ये उधर न जायँ तो सवारी लाकर मैं मोहरोंको ले जाऊँ। बड़ा अच्छा हुआ जो हमलोग उसके धोखेमे नहीं आये और निडर होकर यहाँतक आ गये।' दोनों बहुत

प्रसन्न थे । अब कहीं परदेश जानेकी आवश्यकता रही ही नहीं । बिना ही कुछ किये तकदीर खुल गयी । सोचा—दिनभरके भूखे हैं—कुछ खा-पी लें तो फिर घर लौटें । बड़े भाईने कहा—'गाँव ज्यादा दूर नहीं है, जाकर खानेके लिये हलवा-पूरी ले आओ तो खा लें ।' छोटा भाई हलवा-पूरी लाने चला गया ।

इधर दस हजार मोहरें देखकर बडे भाईका मन ललचाया । विचार आया—'हाय ! इनका आधा हिस्सा हो जायगा । दसकी जगह पाँच हजार ही मुझे मिलेंगी । क्या मुझे सब नहीं मिल सकतीं ।' लोभ पापका बाप है । लोभने बुद्धि बिगाड़ दी । तत्काल निश्चय कर लिया । मिल क्यों नहीं सकतीं । अब तो अवश्य ये दसों हजार मोहरें मेरी ही होंगी । बंदूक भरकर रख लूँ । वह मिठाई लेकर लौटता ही होगा । बस, सामने आते ही गोली दाग दूँगा । वह मर ही जायगा । कौन देखता है यहाँ । यहीं कहीं गड्ढा खोदकर लाश गाड़ दूँगा । बस, फिर सारी मोहरें मेरी हो ही जायँगी । घर जाकर कह दिया जायगा—भाई, हैजेसे मर गया । विचारके अनुसार ही काम हुआ । बंदूक तैयार कर ली गयी ।

उधर छोटे भाईके मनमें भी लोभ जागा । उसने भी दस हजार मोहरें पूरी मिलनेकी बात सोची । उसकी भी बुद्धि बिगड़ी । उसने निश्चय करके संखिया खरीदा और उसका चूर्ण करके हलवेमें मिला दिया । सोचा—'मैं जाकर कहूँगा—भैया ! तुम पहले खा लो । मैं अभी थका हूँ, पीछे खाऊँगा । वह खा ही लेगा और खाते ही

काम तमाम हो जायगा । बस, यों सहज ही सारी मोहरे मेरी हो जायँगी और उसकी लाशको गाड़कर घर चला जाऊँगा ।

इसने यही किया । हलवा-पूरी लेकर ज्यों ही पहुँचा कि दनादन दो-तीन गोलियाँ लगीं । धड़ामसे गिर पड़ा । प्राण-पखेरू तत्काल उड़ गये । अब तो बड़े भाईके आनन्दका पार नहीं रहा । मनुष्य जब पाप करके सफल होता है तो वह उसका परिणाम भूलकर प्रमत्त हो जाता है । सफलताके आनन्दमें वह मस्त हो गया । मनमे आया कि 'पहले हलवा-पूरी खा लूँ, पीछे लाश गाड़नेका काम करूँगा ।'

हलवा खाया । उसमें तीव्र विष था ही, खाते ही चक्कर आने लगे और वह कुछ ही क्षणोंमें वहीं ढेर होकर गिर पड़ा । भागवतमे ब्राह्मणने कहा है—'इस अर्थ नामधारी अनर्थसे दूर ही रहना चाहिये । इससे पंद्रह अनर्थ पैदा होते हैं—चोरी, हिंसा, असत्य, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेद-बुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जूआ और शराब । बड़े प्यारे सम्बन्धी भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र, माता-पिता आदिके मन भी एक-एक कौड़ीको लेकर फट जाते हैं और थोड़े-से धनके लिये वे क्षुब्ध और क्रोधित होकर सारे सौहार्द—प्रेमको भूलकर एक दूसरेका प्राण लेनेपर उतारू हो जाते है ।' यही यहाँ भी हुआ । राजपूत भाइयोंको धनरूपी डाइनने बात-की-बातमें खा लिया !